ओ३म्

मृत्यु को दूर करने के उपाय

(प्राणियों के लिए सबसे विकराल भय 'मृत्यु' का तात्त्विक विवेचन और उससे बचने तथा आयु बढ़ाने के वैदिक उपाय)

लेखक :

स्व० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

सम्पादक :

आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक'

एम० ए० (वेद-संस्कृत)

प्रकाशक :

सत्यधर्म प्रकाशन

चलभाष : ०९२१३३-२६५५२, ०९८१२५-६०२३३

आर्यजगत् की दानवीर विभूति

सुप्रसिद्ध उद्योगपति महाशय धर्मपाल जी

महाशय धर्मपाल, आर्यजगत् और व्यावसायिक क्षेत्र में एक सुप्रसिद्ध नाम है जिससे आबालवृद्धनरनारी सभी सुपरिचित हैं। आप उस विश्वविख्यात 'एम०डी०एच० कम्पनी' के मालिक हैं, जो शुद्ध एवं उत्तम मसालों के निर्माण में विश्व में एक विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी है। वैभवसम्पन्न होते हुए भी आपका जीवन सादगीपूर्ण है। आप 'सादा जीवन उच्च विचार' के प्रतीक हैं। धर्मनिष्ठता, उदार एवं विनम्र स्वभाव, राष्ट्रप्रेम, समाजसेवा, अतिथिसत्कार, गरीबों के हमदर्द, सद्‌गुणसेवी, भारतीय संस्कृति-सभ्यता के प्रेमी, आपके ये ऐसे सहज गुण हैं, जो आपको अन्य व्यावसायियों से विशेष एवं उच्च स्थान प्राप्त कराते हैं।

शास्त्रों में कहा है–**"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"** अर्थात् 'यज्ञ एक श्रेष्ठतम कर्म है'। इस श्रेष्ठतम कर्म का पालन आप पूर्ण श्रद्धा से करते हैं। न केवल आपके घर में, अपितु फैक्टरी में भी प्रतिदिन यज्ञ होता है। जैसे आपका जीवन सद्‌गुणों की गन्ध से सुवासित है, उसी प्रकार आपका घर और फैक्टरी यज्ञ की सुगन्ध से सुगन्धित रहते हैं। महाकवि बाण द्वारा वर्णित प्राचीन वातावरण आपके यहां साकार हो उठता है–**"मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु"** अर्थात् 'मलिन रूप केवल उठते हुए यज्ञ के धूम में ही दिखायी पड़ता है, किसी के आचरण में नहीं।' आप सद्‌गुणों के प्रचार-प्रसार में इतने तल्लीन रहते हैं कि फैक्टरी में काम करने वाले कर्मचारियों को व्यसनों से दूर रहने की प्रेरणा सदा देते रहते हैं। यदि कोई कर्मचारी किसी दुर्गुण को छोड़ देता है तो उसे वेतन वृद्धि देकर प्रोत्साहित करते हैं। किसी ने सच कहा है–**"वित्तेन रक्ष्यते धर्मः"**=सज्जन अपने धन से धर्म की रक्षा और उसका प्रचार-प्रसार ही करते हैं। अनेक वर्षों तक 'केन्द्रीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली' के प्रधान के रूप में आपने आर्यसमाज की निष्ठापूर्वक सेवा की है।

आप अत्यन्त उदारमना दानी हैं। आर्य जगत् में आपकी ख्याति एक दानवीर के रूप में है। अपनी अर्जित सम्पत्ति का एक बड़ा भाग परोपकार और धर्मकार्यों में दान करके आपको आत्मिक सन्तुष्टि का अनुभव होता है। कोई भी सच्चा धर्मसेवी, संन्यासी आपके द्वार से खाली हाथ नहीं लौटता। आपने अनेक विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करके उनके भविष्य का निर्माण कर उन्हें स्वावलम्बी बनाया है। अनेक संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर उनके संचालन में सहयोग दिया है। अपनी पूज्या माताश्री चन्ननदेवी जी की स्मृति में 'चन्ननदेवी हास्पिटल' नामक एक विशाल चिकित्सालय का आप दिल्ली में संचालन करते हैं, जिससे सैकड़ों रोगी लाभान्वित होते हैं। दीन-दुखियों का सहयोग करना आपके पवित्र उद्देश्यों में से एक मुख्य उद्देश्य है। अनाथालयों में सहयोगराशि देकर और अनाथालय का संचालन कर आपने अनेक बालक-बालिकाओं के जीवन को सुरक्षित एवं स्वावलम्बी बनाया है। अपनी फैक्टरी के कर्मचारियों के प्रति भी आप दयालु हैं। विवाह तथा आपत्ति समय में उनकी सहायता करते रहते हैं। उपकार की यह भावना व्यवसायी वर्ग में अत्यन्त दुर्लभ है। यह कथन आप के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है–

"परोपकाराय सतां विभूतयः।"

"परोपकारार्थमिदं शरीरम्।"

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का जन्म परोपकार के लिए ही होता है। उनका शरीर भी परोपकार के काम आता है। महाशय धर्मपाल जी का तन, मन, धन भी धर्मसेवा, समाजसेवा और परोपकार के लिए ही समर्पित है।

पूज्या माताश्री एवं पूज्य पिताश्री

महाशय धर्मपाल जी की पूज्या माता चन्ननदेवी तथा महाशय चुन्नीलाल जी भी एक धर्मनिष्ठ, उदारमना, परोपकारी, राष्ट्रप्रेमी, और परिश्रमशील दम्पती थे। पूज्य पिताश्री का जन्म २४ जुलाई १८८७ को सियालकोट जिला (वर्तमान पाकिस्तान) के ग्राम करतारपुर में प्रसिद्ध हकीम लाला भगवानदास जी के यहां हुआ था। आपने जन्मभूमि से १० कोस दूर स्थित एक आर्य विद्यालय में नवम कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। पिताश्री का बचपन में ही देहान्त हो जाने के कारण महाशय चुन्नीलाल पर घर के दायित्व का सारा बोझ आ पड़ा और उनका जीवन एक संघर्ष की गाथा बन गया।

किन्तु आर्य वातावरण के संस्कारों के कारण उनका जीवन निर्भीक, ईश्वरविश्वासी और परिश्रमी बन चुका था, अतः वे घबराये नहीं, डगमगाये नहीं, कठोर परिश्रम और ईश्वर के सच्चे विश्वास के सहारे आगे ही बढ़ते गये। आपने झेलम में मंगला हेड के निर्माण स्थल पर एक दूकान खोलकर अपनी आजीविका शुरू की। निर्माणकार्य पूरा होने के बाद 'बाजार पंसारियान' में मसालों की दूकान खोली, जो उत्तम मसालों के कारण शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गयी। आर्य संस्कारों और श्रेष्ठ आचरण के कारण प्रसिद्ध आर्यसमाजी लाला गिरधारीलाल जी आपको 'महाशय' कहकर सम्बोधित करने लगे। आपने 'महाशय' सम्बोधन में निहित उच्च और गूढ़ अर्थ को भलीभांति समझा और अपने जीवन को तदनुरूप 'महान् संस्कारों वाला' ही बनाये रखा। सन् १९१९ में आपने अपनी दूकान का नाम ही **'महाशियां दी हट्टी'** रख लिया। आपने प्रण किया कि **"इस दूकान पर कोई मिलावटी मसाला नहीं बेचा जायेगा।"** विशेष गुणवत्ता और ईमानदारी के कारण आपकी दूकान अविभाजित पंजाब में सुप्रसिद्ध हो गयी और दिन प्रतिदिन विकसित होने लगी। आपके यहां की 'देगी मिर्च' एक मिसाल बनकर प्रसिद्ध हुई। भारत विभाजन के उपरान्त यह दूकान दिल्ली में स्थापित हुई। यहां भी यह 'दिन दूनी रात चौगुनी' गति से ख्याति प्राप्त करती चली गयी और आज वही दूकान एक विशाल फैक्टरी का रूप ले चुकी है जिसका व्यावसायिक क्षेत्र देश-विदेशों तक फैला हुआ है। दृढ़ संकल्प, अथक परिश्रम, ईमानदारी, गुणवत्ता और निष्ठा का फल है-'एम०डी०एच० फैक्टरी', जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक प्रेरणास्रोत है। महाराज भर्तृहरि ने ऐसे उद्योगी पुरुषों के लिए ठीक ही कहा है-

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।"

-अथक परिश्रमी पुरुषश्रेष्ठों को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है।

महाशय चुन्नीलाल को १८ वर्ष की अवस्था में विवाह बन्धन में बांध दिया। पत्नी का स्वर्गवास होने के कारण ३२ वर्ष की अवस्था में पुनर्विवाह किया। श्री धर्मवीर, श्री धर्मपाल, श्री सतपाल आपके तीन सुपुत्र हुए, जो गुणों में आपके सदृश श्रेष्ठ एवं परिश्रमी बने।

व्यवसाय के साथ-साथ राष्ट्रसेवा में भी आपका योगदान रहा। आपने

१९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और कारावास की यातनाएं सहीं । व्यापारियों द्वारा संचालित 'सेल्स टैक्स विरोधी आन्दोलन' में भी आपने संस्था प्रधान के रूप में भाग लिया । ९३ वर्ष की अवस्था में १८ नवम्बर १९८० को आप अपनी अविस्मरणीय यादों को छोड़कर इस संसार से विदा हो गये ।

महाशय धर्मपाल जी की पूज्या माता चन्ननदेवी भी एक धार्मिक संस्कारों की महिला थीं । आप मधुरभाषिणी, कोमलहृदया, पतिव्रता, वात्सल्य की मूर्ति एवं प्रसन्न स्वभाव वाली थीं । अपने मधुर एवं श्रेष्ठ व्यवहार से आपने अपने परिवार को एक वैदिक गृहस्थ बनाया हुआ था । अतिथि सत्कार करना, दान देना, गरीबों की सहायता करना, धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन करना आपके स्वभाव का अंग था । **'माता निर्मात्री भवति'** ऋषियों की इस परिभाषा को चरितार्थ करते हुए आपने वात्सल्यपूर्वक अपने पुत्र-पुत्रियों का पालन-पोषण किया और उनके अच्छे संस्कार बनाये । महाशय चुन्नीलाल जी को प्रेरित करने, प्रोत्साहित करने में भी आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। आपने अपने पति के जीवन के संघर्षों में कदम से कदम मिलाकर साथ दिया और सच्ची जीवनसंगिनी के विशेषण को सत्य सिद्ध करके दिखाया ।

ऐसे सुसंस्कृत आर्य परिवार में महाशय धर्मपाल जी का जन्म हुआ। इन्होंने अपनी परिवार की श्रेष्ठ परम्पराओं को और आगे बढ़ाया है । **'सत्यधर्म प्रकाशन'** के समाज हितकारी उद्देश्य और कार्य को देखकर इन्होंने पर्याप्त संख्या में इस उपयोगी पुस्तक को क्रय किया है, एतदर्थ समस्त गुरुकुल परिवार इनका आभारी है । आशा है इनके उदार सहयोग से सत्यधर्म प्रकाशन और गुरुकुल कंवरपुरा शीघ्र उन्नति और समृद्धि प्राप्त करेंगे । गुरुकुल परिवार इनके सम्पूर्ण परिवार के सुस्वास्थ्य, चिरायुष्य, नैरोग्य और समृद्धि के लिए मंगल कामना करता है और इन वैदिक शब्दों में परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता है–

"भूयश्च शरदः शतात् ।"
"सफलाः सन्तु यजमानस्य कामाः ।"

–आपको सौ से अधिक वर्षों का नीरोग आयुष्य प्राप्त हो । आपकी कामनाएं सफल हों और आप धर्म की अभिवृद्धि करते रहें ।

–आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक

सम्पादकीय भूमिका–

मृत्यु को दूर करने के उपाय

मृत्योर्मा अमृतं गमय (बृ० उप०)

हे ईश्वर! मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

सत्संग में सामने बैठै हुए सज्जन से मैंने पूछा–"क्या आप मृत्यु चाहते हैं?" उसने तुरन्त उत्तर दिया–"नहीं।"

फिर मैंने दायीं ओर बैठे सज्जन से पूछा–"आप चाहते हैं?" उसने भी तत्काल कहा–"बिल्कुल नहीं।"

फिर मैंने बायीं ओर बैठे सज्जन से भी यही प्रश्न किया तो उसका भी उत्तर था–"बिल्कुल नहीं।"

फिर मैंने श्रोताओं की ओर उन्मुख होकर सामूहिक रूप से पूछा, तो "क्या आप सब में से कोई मृत्यु को चाहता है?" समवेत स्वर में सभी ने कहा–"नहीं, कोई नहीं चाहता।" फिर भीड़ से कुछ स्वर उभरे और कहने लगे–"आप कैसा अटपटा प्रश्न कर रहे हैं? यह भी कोई चाहने वाली वस्तु है! इसका तो नाम लेना भी अशुभ है।"

कोई नहीं चाहता कि मृत्यु आये, उसका नाम लेना भी अशुभ समझते हैं। सभी मृत्यु से बचना चाहते हैं, किन्तु बच नहीं पाते। मृत्यु आती है और अवश्य आती है। वह अनिवार्य है, अपरिहार्य है। बिल्ली को सामने आता देख कबूतर आँखें बन्द कर लेता है और समझता है बिल्ली चली गयी, किन्तु बिल्ली कहीं नहीं जाती और उसे झपट लेती है। मृत्यु का नाम न लेने से मृत्यु से छुटकारा नहीं मिल सकता। जीवन और मृत्यु जीवन की सच्चाइयाँ हैं, वास्तविकताएँ हैं, जिन पर मनुष्य का कुछ वश नहीं चलता। जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु है; जहाँ निर्माण है, वहाँ विनाश है; जहाँ उत्पत्ति है, वहाँ प्रलय है। जन्म और मृत्यु एक ही पदार्थ के दो किनारे हैं। जन्म के बाद मृत्यु का उपक्रम शुरू हो जाता है और मृत्यु के बाद जन्म का। गीता में कहा है–

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः, ध्रुवं जन्म मृतस्य च।" (२।२७)

अर्थात्–"जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मर जाता है उसका जन्म निश्चित रूप से होता है।" ये दोनों बातें एक ही

सिक्के के दो पक्ष हैं। प्रत्येक पदार्थ के आरम्भ और अन्त हैं। इनके बिना जीवन रूपी सिक्का नहीं बन सकता। आश्चर्य है कि मनुष्य इतनी अपरिहार्य वस्तु का नाम भी नहीं लेना चाहता। वह कबूतर की तरह भुलावे में रहकर, अज्ञानी बनकर मौत के आक्रमण से बचना चाहता है। पर क्या संसार में आज तक कोई बचा है? कोई नहीं। आश्चर्य है फिर भी कोई मरना नहीं चाहता। सभी सदा-सदा के लिए जीवित रहना चाहते हैं। तभी तो महाभारतकार आश्चर्य प्रकट हुआ कहता है-

अहन्यहनि भूतानि, गच्छन्तहि यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतः परम्॥

अर्थात्-हम देख रहे हैं कि प्रतिदिन प्राणी मृत्यु के मुख में समा रहे हैं, जो उत्पन्न हुए हैं वे मर रहे हैं। फिर भी जो शेष हैं वे सोचते हैं कि हम सदा जीवित रहेंगे। इसे बढ़कर और क्या आश्चर्य की बात हो सकती है?

आप विचार कीजिए। यह भी एक आश्चर्य है कि सारा संसार एकमत से जिस बात को नहीं चाहता वह उसके साथ अवश्य घटती है। इसका अभिप्राय यह है कि सारे संसार से महान् शक्तिशाली कोई सत्ता जगत् में विद्यमान है जिसकी न्यायपूर्ण व्यवस्था में जीवों की अमरण की इच्छा का कोई स्थान नहीं है।

जब मरना अपरिहार्य है, तो प्रश्न उठता है कि मृत्यु से बचाव कैसा? मृत्यु से बचाव का प्रयास किसलिए? मृत्यु से बचाव के उपायों की क्या सार्थकता है?

यह भी दूसरा आश्चर्य है कि यह जानते हुए भी कि सभी को एक दिन मरना है फिर भी प्रत्येक प्राणी में मृत्यु से बचने की तीव्र इच्छा है, स्वाभाविक चाहते हैं, उपायों को अपनाने की उत्कण्ठा है। इसीलिए यह ज्ञान-विज्ञान द्वारा नये-नये उपाय ढूँढ़ता रहता है।

मृत्यु को दूर करना है तो पहले भ्रान्ति दूर करो

बहुत से लोग इस महाभ्रान्ति से ग्रस्त हैं कि मृत्यु निश्चित है। परमात्मा ने जन्म के समय जितनी आयु निश्चित कर दी है, उतनी ही रहेगी। मृत्यु का भी समय, स्थान, प्रक्रिया निश्चित है। ऐसा सोचना शास्त्रविरुद्ध, बुद्धिविरुद्ध और व्यवहारविरुद्ध है। जो लोग इस भ्रान्ति को अपने मन में पाले हुए हैं, वे कदापि दीर्घायु प्राप्त नहीं कर सकते

और न ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे ऐसा सोचते हैं तो उन्हें किसी भी स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम का पालन करने की क्या आवश्यकता है? चिकित्सा कराने की क्या आवश्यकता है? मृत्यु से डरने की क्या आवश्यकता है? ऐसी भावना रखने से मनुष्य की इच्छाशक्ति कमजोर होती है, मृत्यु को जीतने की धारणा उसमें नहीं बन सकती और न ही मृत्युंजय उपायों के प्रति प्रयास करता है। परिणामस्वरूप आयु को नहीं बढ़ा पाता।

यह ठीक है कि कर्मफल के अनुसार ही प्राणी को जन्म, आयु, भोग आदि मिलते हैं। किन्तु एक बार इन्हें पाकर वह अपने परिश्रम से इनमें वृद्धि या ह्रास कर सकता है, क्योंकि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है वह स्वतन्त्र शुभ कर्म करके भावी कर्मफल में परिवर्तन कर सकता है। जैसे-ब्रह्मचर्य, व्यायाम आदि द्वारा शरीर में बलवृद्धि करना, स्वस्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन करके आरोग्यवान् बनना, औषधिसेवन से रोगनिवारण करना आदि। इसी प्रकार आयुष्यवर्धक उपायों से आयुवृद्धि करके मनुष्य दीर्घायु हो सकता है। यही वैदिक सिद्धान्त है। इसीलिए वेदशास्त्रों में अनेक स्थानों पर सौ वर्ष या इससे अधिक आयु की कामना की गयी है। दृढ़ इच्छाशक्ति और धर्मपालन से कामना की हुई आयु निश्चित रूप में बढ़ती है, सौ वर्ष से भी अधिक-

"भूयश्च शरदः शतात्" —यजु० ३६।२४

मृत्यु से बचाव का अभिप्राय

मृत्यु अवश्यंभावी है। ऐसी स्थिति में मृत्यु से बचाव के अभिप्राय हैं-

१. मृत्यु को अधिक-से-अधिक समय के लिए टाल देना, अर्थात् आरोग्य और दीर्घ आयुष्य प्राप्त करना।

२. जन्म-मरण के चक्र से ही छूट जाना अर्थात् मुक्ति प्राप्त करना।

३. मृत्यु के भय एवं कष्ट से भयभीत और प्रभावित न होना। मृत्यु को सहज क्रिया मानकर उसे प्रसन्नतापूर्वक वरण करना।

इस प्रकार जो जन्म प्राप्त हो चुका है उसका देहावसान तो होना ही है, किन्तु हम अपने प्रयासों से उपर्युक्त में से किसी एक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। तीनों ही स्थितियाँ प्राप्त करने का स्वल्पाधिक फल है-'सुख'। मुक्ति में जीवात्मा आनन्द को प्राप्त करता है। इसलिए

विवेक जन सांसारिक सुख को प्राप्त करने की अपेक्षा मुक्ति-सुख को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

मृत्यु से बचाव के उपाय

जैसाकि पूर्व कहा जा चुका है कि प्रत्येक प्राणी मृत्यु से बचना चाहता है और बचने के लिए यथाशक्ति, यथाज्ञान प्रयास भी करता है। एक छोटे-से कृमि को भी जब मृत्यु का भय होता है तो वह भी वहाँ से भाग-छिप कर स्वयं को बचाता है। एक छोटा-सा पक्षी मृत्यु का भय पाकर वहाँ से उड़कर अन्यत्र चला जाता है। सभी भरपूर उपाय करते हैं किन्तु मनुष्य एक ऐसा विचित्र प्रकृति का प्राणी है जो मृत्यु से बचाव तो सबसे अधिक चाहता है, किन्तु उपाय सबसे कम करता है जबकि उसे बचाव करने का सबसे अधिक ज्ञान एवं अवसर मिला है। मनुष्य का जन्म ही एक मात्र ऐसा जन्म है जिसमें मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। किन्तु मनुष्य सांसारिकता, भौतिकता में लिप्त होकर उस अवसर को गँवा देता है। जो व्यक्ति मृत्यु से वस्तुतः बचाव चाहता है, उसे निम्न उपाय क्रिया में लाने चाहिएँ-

१. **यथार्थ ज्ञान** (ईश्वर, जीव, प्रकृति, जन्म, मृत्यु आदि के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना)

२. **सद् विचार सद् उपाय** (धर्मपालन, यम-नियम, अनुष्ठान, ईश्वर-आस्था, योग-साधना, इच्छाशक्ति की दृढ़ता आदि)।

३. **भौतिक उपाय** (भौतिक शरीर के आरोग्य एवं दीर्घायुष्य के लिए उचित चिकित्सा, उचित औषधसेवन, व्यायाम, भ्रमण, शुद्ध जल-वायु-सेवन आदि)।

संक्षेप से कहा जा सकता है कि बाह्य-स्थूल शरीर और कारण शरीर=आन्तरिक आत्मा, मन आदि दोनों प्रकार के शरीरों के लिए जब तक कोई व्यक्ति उपाय नहीं करता तब तक मृत्यु को नहीं टाला जा सकता और न मृत्यु के भय एवं कष्ट से बचा जा सकता है। मृत्यु-रोधक इन उपायों पर शास्त्रों में पर्याप्त चिन्तन किया गया है। यहाँ उस चिन्तन को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

१. **यथार्थ ज्ञान**- आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, जन्म-मृत्यु आदि के यथार्थ स्वरूप को समझकर मनुष्य मृत्यु से विचलित नहीं होता। आत्मा अमर है परमात्मा कर्मफल के अनुशार प्रकृतिजन्य पाँच भौतिक शरीर से इसका संयोग-वियोग कराता है। यह एक सहज प्राकृतिक एवं

अनिवार्य प्राक्रिया है। इसे टाला नहीं जा सकता। फिर मृत्यु से भय केसा? इस यथार्थ ज्ञान को पाकर विवेक मनुष्य घबराता नहीं है। मृत्यु का वरण सहजता और धैर्यपूर्वक करता है। गीता में कहा है–

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरस्तत्र न मुह्यति।। (२।१३)

अर्थात् 'मनुष्य जैसे फटे–पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करता है। उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को मृत्यु के रूप में छोड़कर जन्म के रूप में नये शरीर को धारण करता है।' नश्वर शरीर है आत्मा नहीं। आत्मा तो अमर, अजर, अनश्वर है। जब आत्मा मरता ही नहीं तो फिर शोक केसा?

न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

–गीता २।१३

अर्थात्–'जैसे शरीरधाारियों में कौमार्य, यौवन और वार्द्धक्य प्राकृतिक रूप से प्राप्त होते हैं ऐसे ही मृत्यु एक शरीरपरिवर्तन की प्रक्रिया है। इस तत्त्व को जानकर धीर लोग मृत्यु से विचलित नहीं होते'। जीव के लिए शरीर परिवर्तन ठीक ऐसी ही क्रिया है जैसा किसी व्यक्ति द्वारा जीर्ण वास्त्रों का परिवर्तन–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

–गीता २।२२

अर्थात्–यह आत्मा न कभी जन्म लेती है न मरती है। न कभी उत्पन्न हुई है, न उत्पन्न है, न उत्पन्न होगी। यह तो अजर, अमर, नित्य, शाश्वत और सनातन है। शरीर के मरने पर इसकी मृत्यु नहीं होती।

अभिप्राय यह है कि केवल शरीर मरता है आत्मा नहीं। केवल शरीर जन्म लेता है, आत्मा नहीं। हम अर्थात् आत्माएँ तो अमर है। इस तथ्य को जानकर विवेकी मनुष्य मृत्यु से नहीं घबराता।

२. **सद् विचार, सद् उपाय**–अन्तःकरण में श्रेष्ठ विचार रखने से मृत्यु से बचाव होता है। व्यक्ति का शरीर स्वस्थ रहता है। ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से युक्त विचार शरीर के अनेक रोगों के कारण बनते हैं और मानसिक तथा आत्मिक शक्ति का ह्रास करते हैं।

असद् विचारों के कारण मनुष्य को मृत्यु शीघ्र आ घेरती है।

ईश्वर में आस्था तथा उसकी उपासना करना धर्मपालन, यम-नियमों का अनुष्ठान, योग साधना आदि सद् उपायों का अन्तिम फल मुक्ति है। अल्प रूप में सेवन किये गये ये उपाय शरीर, मन, आत्मा को सुख देते हैं। मृत्यु के भय एवं क़ष्ट से अप्रभावित रखते हैं। ईश्वर में सच्ची आस्था रखने वाला व्यक्ति कर्मफल के अनुसार ईश्वर की न्यायपूर्ण व्यवस्था को स्वीकार कर सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि से ऊपर उठ जाता है और प्रत्येक सुख-दुःख का सहज रूप में स्वीकार करता है। ईश्वर के प्रति समर्पित होने के कारण किसी कष्ट से विचलित नहीं होता। विष के प्रभाव से महर्षि दयानन्द के शरीर में फोड़े निकल आये थे। भयंकर कष्ट था। किन्तु फिर भी मृत्यु के अवसर पर उसके चेहरे पर तनिक भी कष्ट अथवा शोक नहीं था। 'ईश्वर तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो' कहकर धैर्यपूर्वक उन्होनें प्राण त्याग दिये। इस दृश्य को देखकर पं० गुरुदत्त जैसा नास्तिक भी आस्तिक बन गया।

इसी प्रकार देशभक्त वीरजन देशभक्ति के धर्म का पालन करते हुए धृति=धैर्य को धारणकर बलिदान की वेदी पर अपने जीवन को प्रसन्नतापूर्वक न्यौछावर कर देते हैं। वे साधारण सांसारिक जनों के समान रोते बिलखते नहीं। यह सब सद् विचारों और सद् उपायों का ही परिणाम है। वेद में 'ब्रह्मचर्य' धर्म का पालन करने से अमरत्व की प्राप्ति का उपदेश दिया-

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।।

-अथर्व० ११।७।१९।।

अर्थात्-"ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या करके देव=श्रेष्ठ विद्वान् लोग मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। इन्द्र=आदित्य ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य के बल से देव=इन्द्रियों के तेज-बल को बढ़ाता है।" इतना तेज बल बढ़ाता है कि वे मृत्यु के वश में नहीं होते। पुर्ण आयु तक स्वस्थ सक्रिय रहते हैं।

इसी आधार पर वेदों में कम-से-कम सौ वर्ष तक की आयु की कामना की गयी है और उससे भी अधिक आयु बढ़ाने के प्रयास की अभिव्यक्ति है-

जीवेम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्।।

—यजु० ३६।२४।।

वेद कहता है कि हे मनुष्यों! तुम धर्मपालन करके पूर्णायु भोगने योग्य बनो और वृद्धावस्था से पूर्व कभी मत मरो—

मा पुरा जरसो मृथाः ।। —अथर्व० ५।३०।१७।।

आज सद् विचारों और सद् उपायों का सेवन न करने के कारण स्थिति यह बन गयी है कि अनेक व्यक्ति बचपन और यौवन में ही काल के ग्रास बन जाते हैं। हृदय, मस्तिष्क आदि सम्बन्धी अनेक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।

मृत्यु पर पूर्ण विजय है 'मुक्ति प्राप्ति'। मुक्ति की प्राप्ति धर्मपालन और ईश्वर-साक्षात्कार द्वारा होती है। वेद में आया है

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

—यजु० ३१।१८

अर्थात् "उस सबसे महान् सूर्य के समान तेजस्वी-प्रकाश-स्वरूप अन्धकार से परे रहने वाले परमपुरुष परमात्मा को मैं जान गया हूँ। उसको जानकर, उसका साक्षात्कार करके ही मनुष्य मृत्यु को पूर्णतः जीत लेता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेता है। मृत्यु की विजय का इससे भिन्न दूसरा कोई उपाय नहीं है।

३. **भौतिक उपाय**—शरीर को नीरोग रखने के लिए और आयुष्य वर्धन के लिए आयुर्वेद में विभिन्न आहार-विहार, चिकित्सा, औषध -सेवन आदि के उपाय बतलाये गये हैं। उनके अनुसार आचरण करने से शरीर नीरोग रहता है, नीरोग रहने से आयु बढ़ती है। रोग आने पर उचित पथ्य और चिकित्सा से शरीर में आरोग्य प्राप्ति होती है। इस प्रकार भौतिक शरीर की रक्षा के लिए भौतिक उपायों का ज्ञान तथा पालन होना चाहिए। इससे मृत्यु से बचाव होता है।

वेदों में अनेक स्थलों पर आयुष्यकामना, नैरोग्य आदि के साथ-साथ भौतिक उपायों के पालन का उपदेश दिया गया है। वेद कहता है कि शुद्ध वायु, जल आदि के सेवन से आयु बढ़ती है। यज्ञ आदि के द्वारा पर्यावरण की शुद्धि रखने से आरोग्य-प्राप्ति होती है। अतः इनका पालन करें। एक मन्त्र द्रष्टव्य है—

वात आ वातु भेषजं शंभु मयो भुवो हृदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ –ऋक्० १०।१८६।१॥

अर्थात् 'औषध के समान रोगनाशक शुद्ध वायु हमारे पास प्रवाहित हो अर्थात् हम ऐसे वायु का सेवन करें। शुद्ध और रोगनाशक वायु सुख-स्वास्थ्यदायक है, और मन-हृदय-आत्मा में प्रसन्नता का संचार करता है। वह वायु हमारी आयु को बढ़ावे। इस प्रकार शुद्ध वायु आयु को बढ़ाने वाला है। हमें ऐसे सभी उपायों का ध्यान रखकर उनका पालन करना चाहिए। निश्चय ही हम मृत्यु को अधिक-से-अधिक टालकर दीर्घायु बन सकेंगे। मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।

इस पुस्तक में मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के अनेक उपाय बतलाये गये हैं। मृत्यु-तत्व सम्बन्धी गम्भीर चिन्तन है। विद्वान् लेखक वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनका चिन्तन प्रत्येक पाठक को लाभ पहुँचायेगा। इस पुस्तक को पढ़कर प्रत्येक पाठक को मृत्यु के भयंकर रूप से मुक्ति भी मिलेगी और मृत्यु विजय की प्रेरणा भी, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

–आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक'
(सम्पादक)

विषय-सूची

	पृष्ठ
मृत्यु से बोध (प्राक्कथन)	१८
मृत्यु को दूर करने के उपाय	२१
१. मृत्यु का भय	२१
२. पुरुषार्थ पर विश्वास	२१
३. जन्म और मरण का सम्बन्ध	२२
४. मरण का स्वरूप	२३
५. धर्म और मृत्यु	२९
६. इच्छामरण की सिद्धि	३२
७. अमरत्व की प्राप्ति	३३
मृत्यु के विषय में वेद का उपदेश	३५
१. यमदूत और मृत्यु के पाश	३५
२. मृत्यु की सत्ता	३८
३. मृत्यु को हटाने की विधि	४०
आयुष्य बढ़ाओ	४७
दीर्घ आयुष्य	५३
आत्म-विश्वास	५६
उन्नति का मार्ग	५९
आत्म-परीक्षण	६०
आज ही प्रारम्भ करो	६२
सबसे बड़ा आश्चर्य	६३
अदीनाः स्याम शरदः शतं	६८
सौ वर्ष की आयु का कार्य	७४
मृत्यु विजय	७७

मानवी आयुष्य ८२

१. प्राचीन काल में आर्यावर्त में दीर्घायुषी लोग..... ८२

२. मनुष्यों की अयुष्यमर्यादा वास्तविक कितनी है? ८९

३. मानवी आयुष्यमर्यादा के विषय में वेद की सम्मति ९२

४. मनुष्य के प्रयत्न से आयुष्य घट या बढ़ सकता है वा नहीं? १०३

५. किन-किन नियमों के पालन करने से आयुष्य की वृद्धि..... १०९

६. अब हमारी आयु की अवस्था क्या है और उसको दीर्घ बनाने..... ११६

मृत्यु के चार कारण ११८

मृत्यु एवं अमर १२३

मृत्यु से बोध

प्राक्कथन

ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु मेरे सामने ति० २४ वैशाख सं० १९७८ के दिन सायं काल के समय हुई। जिस दिन मृत्यु हुई उस दिन सवेरे उसने मुझे कहा कि "आज मेरा मृत्यु का दिन है, इसलिए लोकमान्य तिलक महोदय जी का श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र ले आओ। मृत्यु के समय इसी का पाठ करना चाहिए।" बारम्बार उसके कहने के कारण उक्त पुस्तक उसको दी गई। पुस्तक मिलने के पश्चात् उसने बड़े प्रेम और विलक्षण श्रद्धा से उसको अपनी छाती से लगाया, पुस्तक खोलकर कुछ श्लोक पढ़े और थोड़ी देर के बाद कहा—

"कर्मयोग के बिना उन्नति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।" .... "जब तक ऐसे आपस के झगड़े रहेंगे, तब तक देश कभी उठ नहीं सकता।" ..."सबको मिलकर प्रयत्न करना चाहिए।"

तदनन्तर भगवद्गीता ग्रन्थ का अपने पास ही रखा लिया और बड़ी देर तक शान्त रहा। पश्चात् निश्चयपूर्ण श्वर से कहा कि—

"देश के लिए जीवन जावे तो कुछ परवाह नहीं।"

जिस समय यह वाक्य बोला गया, उस समय शक्ति अत्यन्त क्षीण हो रही थी और यह समय बिलकुल अन्तिम समय है ऐसा हम सबको निश्चय हो चुका था। इतने में सायं काल के करीब साढ़े पाँच बजने के समय हम सबको अपने पास बुलाकर अपना उद्देश्य स्पष्ट शब्दों में निम्न प्रकार कहा—

"मेरे प्यारे दोस्तो! देश की स्वतन्त्रता के लिए, अपनी स्वाधीनता के लिए, देश की प्रतिष्ठा के लिए, प्राचीन गौरव की रक्षा के लिए, खून बहाओ, अकेले-अकेले खून बहाओ....."

"देश की स्वतन्त्रता के लिए तलवार.......तिलक, तिलक, तिलक........"

यह सुनकर डॉ० सुखदेवजी ने, जो पास ही मौजूद थे, पूछा कि

'क्या चाहते हो? क्या तुमको जल पीना है?' इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मचारीजी ने कहा कि–

"स्वतन्त्रता का...जल....."

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी उस अवस्था में पहुँचा कि जहाँ सबको जाना है।

जगत् में जो-जों घटनाएँ होती हैं वे हमें बोध देती हैं, यदि हम उन घटनाओं से बोध लेंगे, तो हमारा कल्याण होगा, अन्यथा कष्टों से बचना कठिन है। उक्त घटना से भी हमें एक बोध मिल सकता है, वह यह है कि, "अन्तिम समय के विचार अत्यन्त उत्तम और पवित्र होने चाहिए।"

श्रीमद्भगवतगीता (अ० ८।५, ६) में कहा है–

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ५॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ ६॥

"अन्तकाल में जो मेरा स्मरण करता हुआ देह त्यागता है, वह मेरे स्वरूप में निःसन्देह मिल जाता है। अथवा हे कौन्तेय! सदा जन्मभर उसी में रंगे रहने से मनुष्य जिस भाव का स्मरण करता हुआ अन्त में शरीर त्यागता है वह उसी भाव में जा मिलता है।"

तात्पर्य यह है कि यदि देह त्यागने के समय अन्त में उच्च भाव रहे, तो उच्च अवस्था में द्वितीय जन्म होता है, यदि हीनभाव मन में रहे तो हीन परिस्थिति में जन्म होता है। इस प्रकार अगले जन्म का बीज हम इसी जन्म के अन्तिम समय में बोते हैं। इस नियम के अनुसार उक्त ज्येष्ठ पुत्र का द्वितीय जन्म किस परिस्थिति में होगा, इसका अनुमान हो सकता है, परन्तु यहाँ हमको मरे हुओं का अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ईश्वरीय नियमों के अनुसार उनकी जो अवस्था होनी है वह हो जाएगी। हमें यहाँ जीवित मनुष्यों के लिए ही विचार करना चाहिए और आवश्यक ज्ञान लेना चाहिए।

मरने के समय अपने शुद्ध, उच्च और पवित्र विचार होने के लिए जैसा शुद्ध उच्च और पवित्र आचरण होना आवश्यक है, वैसा ही आचरण करने की तैयारियाँ हम सबको करनी चाहिए; जो विचार मन

में दिन भर रहते हैं वे ही स्वप्न में आते हैं; इसी नियम के अनुसार जो विचार अपनी आयु में प्रधानरूप में मन में रहेंगे वे ही विचार अन्तिम समय में व्यक्त हो सकते हैं। इसीलिए वेद ने कहा है कि–

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

–ऋ० १। ८९। ८॥

"(१) कानों से कल्याणकारक उपदेश श्रवण करें, (२) आँखों से कल्याणकारक दृश्य देखें, (३) दृढ़ अंगों से युक्त हमारे शरीरों से हमारी आयु समाप्त होने तक उत्तम विचार के साथ देवों का हित करते रहें।"

हमारा शरीर सत्कर्म में अर्पण हो, हमारी इन्द्रियाँ प्रशस्त पुरुषार्थ में तत्पर हों, हमारा मन शुभविचारों में स्थिर रहे; तात्पर्य कि हमारे पास जो कुछ हो उसका समर्पण प्रशस्ततम पुरुषार्थ में होता रहे। इस प्रकार होने से हमारा स्वभाव की परिशुद्ध होगा और किसी भी आयु में हमारी मृत्यु हुई तो भी अन्त समय में हमारे विचार शुद्ध ही रहेंगे। और अन्तिम समय के विचार शुद्ध रहने से अगले जन्म की अवस्था अधिक उच्च होगी।

"हमारा भविष्य हमारे हाथों में है।" जैसा हम बोते हैं वैसा हम पाते हैं। यदि इस शरीररूपी क्षेत्र पर धान्य बोनेवाले किसान हम ही हैं तो उत्तम विचारों को बोकर यहाँ ही सुविचारपूर्ण श्रेष्ठ उद्यान बनाना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है। आशा है कि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे और उत्तम रीति से प्रयत्न करेंगे।

औंध (जि० सतारा) **श्री दा० सातवळेकर,**

स्वाध्याय मण्डल

मृत्यु को दूर करने के उपाय

(१) मृत्यु का भय

प्राणिमात्र को मृत्यु का भय है। ज्ञानी तथा अज्ञानी, छोटा अथवा बड़ा, श्रीमान् किंवा दरिद्री, मनुष्य और मनुष्येतर सब ही मृत्यु से भयभीत होते हैं। छोटे-से-छोटे कृमि मृत्यु का सम्भव प्राप्त होने पर वहाँ से दूर भाग जाता है और समझता है कि मेरे इस पुरुषार्थ से मृत्यु दूर हुआ है और अब मुझे इस मृत्यु से मरने का भय नहीं है। छोटे से कृमि-कीट का अपने पुरुषार्थ पर यह दृढ़ विश्वास मनुष्य के अन्तःकरण में अपने पुरुषार्थ के विषय में हो जाएगा, तो निःसन्देह बेड़ा पार हो जाएगा!

यह विचारणीय बात है कि निसर्गतः अज्ञानी कृमिकीटों को भी अपने मृत्यु का पता केसे लगा, और उस स्थान से भाग जाने का पुरुषार्थ करने का उत्साह उनको किसने सिखलाया? इसका विचार करते-करते विचारी मनुष्य पुनर्जन्म पर विश्वास करने लग जाता है, और समझता है, कि प्रत्येक प्राणिमात्र के अन्दर जो यह मृत्यु का भय लगा हुआ है, वह मृत्यु के अनुभव के कारण ही है। पहले कई बार इसने स्वयं मृत्यु का अनुभव किया और देखा कि मृत्यु से क्या आपत्ति होती है। मृत्यु के अनिष्ट अनुभव का गुप्तज्ञान उसकी सूक्ष्म बुद्धि में छिपा हुआ रहता है और यही उसको प्रेरणा करता है कि तुम मृत्यु से बचने का यत्न करो। अर्थात् पुनर्जन्म सत्य है, इसीलिए प्रत्येक प्राणी मृत्यु से भयभीत होता है; यदि पूर्व मृत्यु का अनुभव न होता तो इस देह में आने के पश्चात् मृत्यु की कल्पना भी किसी प्राणी को न होती और जिसकी कल्पना भी नहीं होती उसके विषय में भय होना सर्वथा असम्भव है।

(२) पुरुषार्थ पर विश्वास

प्राणिमात्र मृत्यु से भागने का यत्न करते हैं। इस भागने की क्रिया में भी मृत्यु को दूर करने का ही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ से मृत्यु को दूर किया जा सकता है, यह दृढ़ विश्वास निःसन्देह है। यह विश्वास सब प्राणियों में केसे उत्पन्न हुआ? क्या कभी किसी ने अपने पुरुषार्थ से मृत्यु को दूर किया था? निःसन्देह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक जीवात्मा

को अनुभव है कि पुरुषार्थ से मृत्यु को दूर हटाया जा सकता है। किसी-न-किसी समय प्रत्येक जीवात्मा ने अवश्य ही मृत्यु को जीत लिया होगा। काल अनन्त है और जन्म-मरण परम्परा भी अखण्ड है। इसलिए मृत्यु का दूर करने का पुरुषार्थ भी अनन्तकाल से चल ही रहा है। कोई पुरुषार्थी योगी योग मार्ग से चलता हुआ मृत्यु को जीत लेता है और अमृत प्राप्त करता है, परन्तु अन्य प्राणी यथाकथंचित् अपने से जितना हो सकता है उतना पुरुषार्थ करते ही रहते हैं।

इस भूमण्डल पर सैकड़ों योनियाँ हैं, परन्तु उन सबमें मनुष्य ही एक ऐसा है कि जो मृत्यु को जीतने का प्रयत्न करके सफलता प्राप्त कर सकता है। वैदिक धर्म में सर्वत्र इसी योगमार्ग का उल्लेख है, जिसका अंशतः निरूपण "वैदिक-प्राण-विद्या" नामक पुस्तक में किया है। इस मार्ग का अवलम्बन करके इस आर्यदेश के ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी और ज्ञानी मृत्यु को जीतकर अमर हो गये थे, इसलिए पूर्ण विश्वास है कि जो इस समय में भी इस मार्ग का अवलम्बन करेंगे, उनको उतनी सिद्धि अवश्य प्राप्त हो सकती है।

यहाँ कई लोग पूछेंगे कि यदि ऋषि, मुनि अमर हो गए थे, तो वे इस समय कहाँ हैं? इस प्रश्न का उत्तर अमरत्व के स्वरूप का ज्ञान होने के पश्चात् ही दिया जा सकता है। इसलिए यहाँ मृत्यु कया है और जन्म क्या है, इसका विचार करता हूँ।

(३) जन्म और मरण का सम्बन्ध

प्रत्येक प्राणी जन्म लेता है और जो जन्म लेता है उसको अवश्य ही मरना है। प्रत्येक प्राणीमात्र के लिए मरना अपरिहार्य है। जो अपरिहार्य है अर्थातृ जो बदला नहीं जा सकता, उसके विषय में भय, शोक, मोह धारण करना वास्तविक मूर्खता का ही काम है, परन्तु यह मूर्खता प्रायः सबमें ही विद्यमान है। व्याख्यानों में और लेखों में धैर्य का उपदेश करने वाले भी परीक्षा के समय कोलाहल मचाते हैं, परन्तु कई ऐसे सत्पुरुष देखे हैं कि जिनका मन मृत्यु के प्रलय कार्य के समय में भी अचल, स्थिर और गम्भीर रहता है!! ये ही सत्पुरुष हैं कि जिनके समान प्रत्येक धार्मिक मुनष्य को बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

मनुष्य के व्यवहार में एक बड़ा आश्चर्य है कि वह जन्म के समय आनन्द मानता है और मृत्यु के समय दुःख करता है, परन्तु उसको पता नहीं है कि यदि किसी स्थान पर किसी का मृत्यु न हुआ,

तो दूसरे स्थान पर किसी का जन्म भी नहीं हो सकता, अर्थात् यदि आप पुत्र का जन्म का आनन्द लेना चाहते हैं, तो इस आनन्द के लिए किसी मृत्यु का दुःख किसी न किसी को स्वीकार करना ही चाहिए। एक स्थान पर जिसका मृत्यु होता है, उसी का दूसरे स्थान पर जन्म होता है; इसलिए स्पष्ट है कि मृत्यु होने के बिना जन्म नहीं हो सकता। यही कारण है कि सच्चे सत्पुरुष न तो जन्म से आनन्दित होते हैं और न मृत्यु से डरते हैं। जो जन्म से आनन्दित होगा उसको मृत्यु से अवश्यमेव दुःख होगा। इसलिए "सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को समान समझकर, प्रत्येक अवस्था में हमें अपने कर्त्तव्य में तत्पर रहना चाहिए और सदा अपना मन स्थिर, शान्त और गम्भीर रखने का यत्न करना चाहिए।"

जन्म और मृत्यु ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। एक का कारण दूसरा रहता है इसलिए स्पष्ट है कि यदि एक के विषय में प्रेम न रहेगा तो दूसरे के विषय में भय भी नहीं रह सकता। यद्यपि साधारण मनुष्य मृत्यु से दूर भागना चाहते हैं, तथापि कई असाधारण सत्पुरुष समय-समय पर आनन्द से मृत्यु को स्वीकार करते हैं। उनको मृत्यु का उतना भय नहीं होता कि जितना साधारण मनुष्य को होता है। जनता को निर्भय करने के उच्च ध्येय की सिद्धि के लिए राष्ट्रीय वीर और देशहितैषी विद्वान् अपनी आहुति राष्ट्रीय महायज्ञ में अर्पण करके कीर्तिरूप से अजर अमर होते हैं। इनके हृदय में मृत्यु का भय यत्किंचित् भी नहीं होता। राष्ट्र के इतिहास में ऐसे सुवीरों के नाम सुशोभित हुए हैं। इन वीरों के अन्तःकरण देखने से पता लगता है कि वहाँ मृत्यु का भय नहीं था। उनके अन्दर मृत्यु के साथ युद्ध करने का साहस था। इसलिए मृत्यु के समय उनका हृदय आनन्द से परिपूर्ण होता था। इन वीरों के चरित्र देखने से हमें पता लगता है कि मनुष्य का मन ऐसा निर्भय भी बनाया जा सकता है। सारांश है कि सुशिक्षा आदि द्वारा यदि विशेष संस्कार मन के ऊपर किये जाएँगें, तो मनुष्य का मन उक्त प्रकार निर्भय हो सकता है, परन्तु ये इष्ट संस्कार बचपन से ही मनुष्य के मन पर होने चाहिए। बड़ी उम्र में भी किये जा सकते हैं, परन्तु अधिक परिश्रम की आवश्यकता होगी।

(४) मरण का स्वरूप

जन्म और मरण केसा होता है, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और मृत्यु इनकी घटना केसी है, इसका अब विचार करना है। इसका उत्तम ज्ञान होने के

लिए मनुष्य के वास्तविक स्वरूप का पता हमें लगना चाहिए। मनुष्य का तो यह बाहर का स्थूल शरीर दिखाई देता है, उसके अतिरिक्त उसके अन्दर तीन–चार शरीर और विद्यमान हैं। ये सब शरीर मिलकर मनुष्य होता है। इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित कोष्टक से हो सकता है–

कोश	**देह**	**साधन**	**तत्त्व**
अन्नमय कोष...	स्थूल शरीर...	ब्राह्य देह...	पञ्च महाभूत
प्राणमय कोश...	सूक्ष्मशरीर...	प्राण, इन्द्रिय ...	वायु, तन्मात्र
मनोमय कोश...	कारणशरीर...	मन चित्त, अहंकार ...	अहंकार
विज्ञानमय कोश	महाकारण	बुद्धि ...	महत्तत्त्व
आनन्दमय कोश	शरीर	केवलता ...	मूल प्रकृति

इन पदार्थों का चित्र निम्न प्रकार बन सकता है–

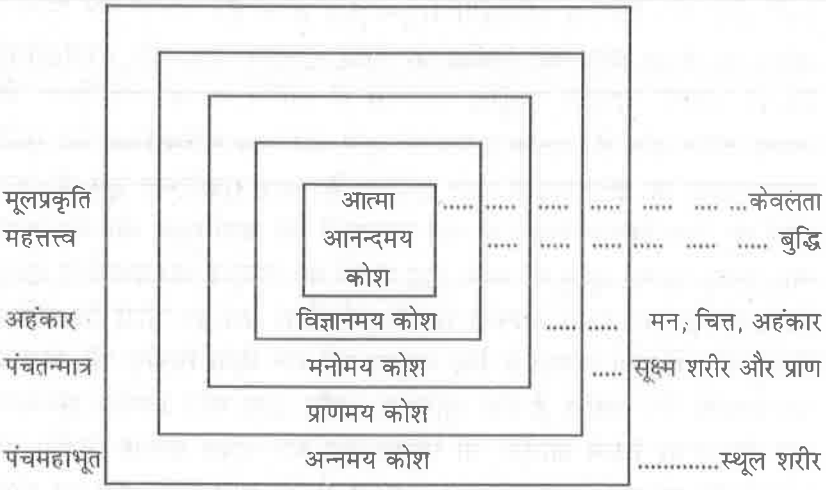

इतने साधनों का और शरीरों का उपयोग जीव करता है। इस बात को प्रथम विचार की दृष्टि से समझना चाहिए। तत्पश्चात् मृत्यु का रूप ध्यान में आ सकता है।

जागृति में मनुष्य स्थूल शरीर के साथ कार्य करता है। स्वप्न में

सूक्ष्म शरीर के साथ रहता है और सुषुप्ति में कारण शरीर में विराजता है। स्वप्न में स्थूल का सम्बन्ध कम होता है और सुषुप्ति में स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के साथ सम्बन्ध शिथिल होता है। इसका स्पष्टीकरण निम्न चित्रों से हो सकता है–

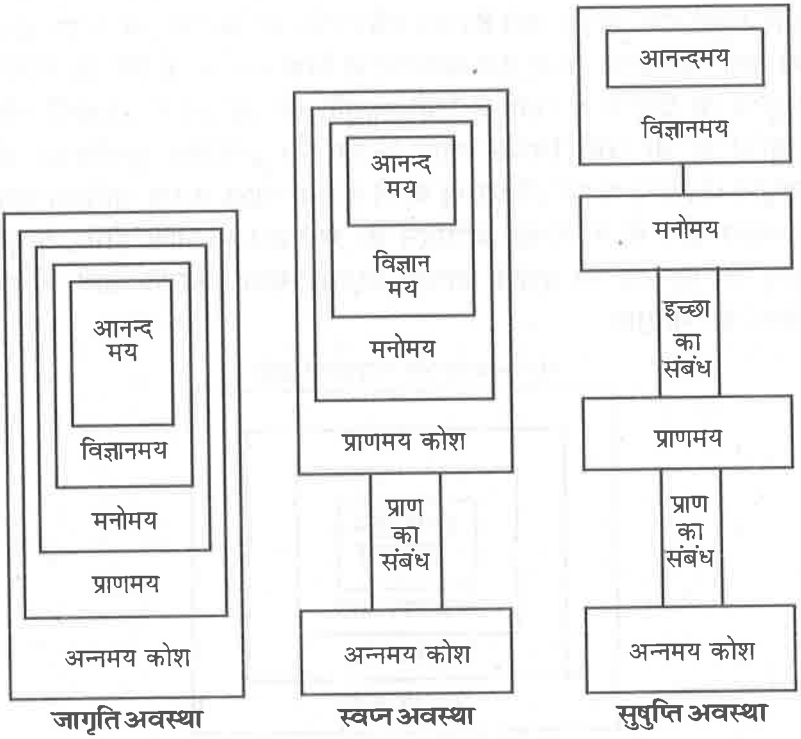

जागृति में सब शरीरों का कार्य स्थूल देह के साथ होता रहता है, स्वप्न अवस्था में अर्थात् जब ख्वाब (स्वप्न) आते हैं तब स्थूल शरीर शिथिल रहता है और कार्य नहीं करता, परन्तु इस अवस्था में स्थूल शरीर के साथ प्राण का सम्बन्ध रहता है और मन ही संकल्प–विकल्प करता रहता है। मन में जो संकल्प–विकल्प आते हैं वे ही प्रायः स्वप्न में दिखाई देते हैं। अपने मन के संकल्प–विकल्प के साथ इस समय और भी कल्पनाएँ सम्मिलित होती हैं। सर्वव्यापक अहंकार और महत्तत्त्व में जो सम्पूर्ण मानव जाति के मानसिक लहरों के परिणाम गुप्त रहते हैं, उनके साथ इस समय उनका सम्बन्ध आता है और अघटित घटनाओं का भी इस समय उसको प्रत्यक्ष हो सकता है। इसलिए कइयों को ऐसे

विलक्षण स्वप्न आते हैं कि जिनका भूत, वर्तमान अथवा भविष्यकालीन बातों के साथ स्पष्ट सम्बन्ध अनुभव में आता है। यह सारांश से स्वप्न अवस्था का स्वरूप है।

सुषुप्ति अवस्था में मन भी लीन हो जाता है और साथ–साथ सूक्ष्म और स्थूल देह भी सो जाते हैं। मन लीन होने के कारण इस समय कुछ भी ज्ञान नहीं होता, परन्तु इस अवस्था में विशेषता यह है कि जो विचार सुषुप्ति के प्रारम्भ में रहता है वही जागृति के आरम्भ में रहता है और सुषुप्ति में भी वही विचार कार्य करता है। इसलिए शुभविचार ही जागृति के अन्त में मन में धारण करने का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा अभ्यास होने से न केवल प्रतिदिन के व्यवहार में लाभ होगा, प्रत्युत मृत्यु के पश्चात् भी इससे फायदा होगा। इसका कारण आगे जाकर स्पष्ट हो जाएगा।

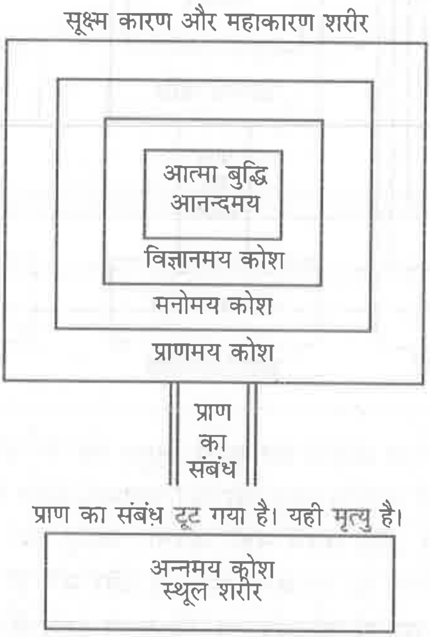

सुषुप्ति में तथा स्वप्न में शरीर स्थिर हो जाता है। इस समय इसलिए जीवित रहाता है कि प्राण का सम्बन्ध टूटता नहीं। यदि प्राण का सम्बन्ध टूट जाएगा तो स्वप्न अवस्था में और मृत्यु में कोई भेद ही नहीं रहेगा। प्राण का सम्बन्ध रहने से जैसा स्वप्न अवस्था का अनुभव होता है वैसा ही अनुभव प्राण का सम्बन्ध, स्थूल शरीर के साथ टूट

जाने पर भी मृत्यु के पश्चात् हो सकता है, क्योंकि संकल्प-विकल्प करनेवाला सूक्ष्म शरीर मृत्यु के पश्चात् भी विद्यमान ही रहता है, यह बात पूर्वचित्र से स्पष्ट होगी।

मृत्यु के पश्चात् स्थूल शरीर पृथिवी पर रहता है और प्राण के साथ अन्य शरीर परमेश्वर के नियोजित मार्ग से चलने लगते हैं। यद्यपि स्थूल शरीर का कार्य इस अवस्था में बन्द होता है, तथापि सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर आदि धर्म गुप्त नहीं होते, अर्थात् प्रत्येक रात्रि के समय स्वप्न में जो अवस्था हरएक अनुभव करता है वही अवस्था मृत्यु के पश्चात् अनुभव में आती है। यदि पाठक अपने सब शरीरों में गुणधर्मों का विचार अपने मन में स्थिर करेंगे तो उनको पता लग जाएगा कि स्वप्न में और मृत्यु में बहुत ही अल्प अन्तर है।

स्वप्न का अनुभव किया है? ऐसा प्रश्न यहाँ हो सकता है स्वप्न का अनुभव हरएक जानता है। यदि किसी का शरीर फोड़ों, फुन्सियों, ज्वर आदि से कष्टपूर्ण होगा तो उन कष्टों का अनुभव स्वप्न में उसको नहीं होता तथा सुषप्ति अर्थात् गाढ निद्रा में भी नहीं होता। हरएक का अनुभव यही है। शरीर के फोड़ों का दुःख स्वप्न में कदापि नहीं होता; इसका यही तात्पर्य है कि इस स्वप्न अवस्था में स्थूल शरीर का सम्बन्ध छूट जाता है और फोड़े आदि स्थूल शरीर पर ही होते हैं। इसी प्रकार जब बीमार मर जाता है, तब वह सूक्ष्म शरीर में जाकर अपने खयाली दुनियाँ में रमण करता है। इसी कारण मरण आते ही उस शरीर को बड़ा ही आराम मिलता है, क्योंकि सब कष्ट जो इस स्थूल शरीर का सम्बन्ध छूट जाने से उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं। इसलिए मृत्यु की अवस्था कष्ट का नहीं बल्कि आराम की है।

कई कहते और समझते हैं कि मरण के समय बड़े कष्ट होते हैं, परन्तु यह बिलकुल भ्रम है। मरण उतना ही सुगम है जितना जागृति में स्वप्न में जाना आसान है। स्वप्न में प्राण का सम्बन्ध रहता है और मृत्यु में हट जाता है, इतना ही भेद है, परन्तु इस कारण स्वप्न की अपेक्षा मृत्यु के समय अधिक कष्ट होते हैं ऐसा मानने के लिए कोई विशेष कारण नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि जो अपने सब शरीरों का विज्ञान रखते हैं, उनको यह बात स्पष्ट होती है कि मृत्यु की अवस्था बड़ी आराम की होती है। जैसा स्वप्न में मानसिक कल्पना की सृष्टि का अनुभव लेनेवाला मनुष्य दुनियादारी के भयानक झगड़ों को भूल जाता है और कल्पना में ही मस्त रहता है वही बात मृत्यु के समय अनुभव

में आती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन की निद्रा के पूर्व प्राप्त होनेवाली स्वप्न की अवस्था का विचार करके मृत्यु के पश्चात् की अवस्था की कल्पना कर सकता है। इसमें कोई विशेष कठिनता नहीं है। जागृति से स्वप्न और सुषप्ति प्राप्त होना कितना आसान है इसका प्रत्येक अनुभव करता है, वही अनुभव मृत्यु के पश्चात् आता है।

यहाँ कई कहेंगे कि मृत्यु के समय जो उस मरनेवाले को कष्ट होने का अनुभव दूसरों को दिखाई देता है, उसका कारण क्या है? वह केवल देखनेवालों के काल्पनिक भय है, क्योंकि इस स्थूल शरीर द्वारा सुख अथवा दुःख का अनुभव करने के सब ही साधन उसके पूर्व ही हट जाते हैं। इसलिए स्थूल शरीर के जो अन्तिम प्रयत्न होते हैं, उनसे आत्मा को किसी प्रकार के कष्ट नहीं होते। जब तक बीमार बोलता रहता है और उत्तर देता है, तब तक उसको कष्टों का कोई पता नहीं होता। यही परमात्मा की अपार दया है कि कष्टों के पहले ही बेहोशी और पश्चात् स्वप्न का सुख उसने रखा है।

स्थूल शरीर का सम्बन्ध छूटने के पूर्व ही उसको स्वप्न के समान अवस्था प्राप्त होती है, और इसी अवस्था में वह आत्मा मरने के समय और मरने के पश्चात् रहता है। स्वप्न की अवस्था मन के संस्कार और इच्छा की प्रधानता के अनुकूल होती है। यदि कोई मनुष्य योगाभ्यास में रुचि रखता हुआ अनुष्ठान करता रहता है, तो उसको उक्त विचारों के ही स्वप्न आ जाएँगे। कोई दूसरा मनुष्य सार्वजनिक हित के कार्य करने में अपने-आपको लगाता है तो उसको वैसे ही स्वप्न आएँगे। जिसके जैसे मनोभाव होंगे वैसे ही स्वप्न उसको आ सकेंगे। इसलिए प्रतिदिन के स्वप्नों के समान ही मृत्यु के समय अथवा तत्पश्चात् के स्वप्न में ही वह मस्त रहेगा। यहाँ तक कि उसको अपनी मृत्यु का भी पता नहीं होगा और अपने सम्बन्धियों का भी विचार उसको नहीं आएगा। हाँ, यदि उसको अपने बाल-बच्चों के साथ ही खेलता और प्रेम करता रहेगा। इसी प्रकार अन्य व्यवसायी अपने व्यवसाय के स्वप्न में मस्त रहेगा। यह मरणोत्तर की स्थिति है।

मरण के पश्चात् दो अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं—एक यह स्वप्न के समान अवस्था और उसके पश्चात् सुषुप्ति के समान दूसरी अवस्था। इन अवस्थाओं का काल आयुष्य की घटनाओं के अनुरूप छोटा अथवा बड़ा हो सकता है। जैसा एक दिन का बालक यदि मर गया तो उसको

थोड़े समय तक ही इन अवस्थाओं में से गुजरना होगा; तथा राजकीय और सामाजिक बड़ी-बड़ी घटनाओं में जो सज्जन रात-दिन कार्य करता है, उसके लिए ये दोनों अवस्थाएँ बड़ी लम्बी हो सकती हैं। ये दोनों अवस्थाएँ विश्रान्ति की अवस्थाएँ होती हैं, इसलिए इस जन्म में जिस प्रकार का कार्य हुआ होगा उस प्रकार की उसको विश्रान्ति मिलेगी और उस विश्रान्ति के कारण द्वितीय जन्म में द्विगुणित उत्साह प्राप्त होगा।

जैसा शारीरिक मेहनत करनेवाला मजदूर आराम से आठ-दस घण्टे सो जाता है, परन्तु बैठकर काम करनेवाला बाबू बड़ी मुश्किल से पाँच या छह घण्टे नींद पाता है, उसी प्रकार मरण के पश्चात् भी होता है। सूक्ष्म शरीरों की थकावट जिस प्रकार हुई होगी उस प्रकार उसको विश्रान्ति की आवश्यकता होगी। इसका अन्दाज करने के लिए हिसाब उलटा करना चाहिए, अर्थात् जगत् में शारीरिक काम करनेवाले मजदूर आदमी से लिखने-पढ़ने का काम करने वाले बाबूजी को स्थूल देह में निद्रा कम आती है, परन्तु इसके उलटा मृत्यु के पश्चात् होता है। विचार का कार्य करनेवालों को मरणोत्तर की विश्रान्ति अधिक होती है और शारीरिक काम करनेवालों को कम होती है। प्रतिदिन की निद्रा से शरीर की थकावट दूर हो जाती है और मृत्यु के कारण अन्य सूक्ष्म देहों की थकावट दूर होकर उनमें फिर कार्य करने की शक्ति आती है। इससे पाठक जान सकते हैं कि मृत्यु के कारण कितना आवश्यक कार्य हो रहा है।

स्थूल शरीर का रोगों के कारण अथवा आयु के कारण जीर्ण होना, अपघात से निकम्मा बनना, अथवा विचार आदि के कार्य अधिक करने के कारण उन सूक्ष्म देहों की शक्ति क्षीण होना, इत्यादि कारण हैं कि जिनसे मृत्यु होती है। योगीजन इन हानियों से अपने-आपको बचाते हैं, इसलिए योगी अपनी आयु इच्छा और प्रयत्नानुसार बढ़ा सकते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि शरीरों को क्षीण न होने देना, योगसाधना का मुख्य हेतु है। इसलिए योगसाधन अल्प भी किया जाएगा तो उसी के अनुसार लाभ अवश्व होगा।

(५) धर्म और मृत्यु

धर्म की सहायता से मृत्यु का भय दूर हो जाता है। यह बात स्पष्ट रीति से जानी जा सकती है। देखिए, धर्म नियमों का मूल हेतु स्थूलदेह,

सूक्ष्मदेह और कारणदेहों को शुद्ध, पवित्र और बलिष्ठ बनाना है। प्रत्येक देह का विकास करके उसको परिपूर्ण बनाना धर्म के नियमों का मूल उद्देश्य हैं। साधारण मनुष्यों के सूक्ष्म शरीर बड़े विशाल होते हैं, परन्तु योगी की दृष्टि से उनके भी शरीर निर्दोष नहीं होते, यही कारण है कि कोई पहलवान दो-तीन सौ वर्ष जीवित नहीं रहता, प्रत्युत साधारण मनुष्यों से भी न्यून आयु में कदाचित् इनकी मृत्यु होती है। निर्दोष शरीर होने का परिणाम अतिदीर्घ आयु है। शरीर का बल, आरोग्य और दीर्घ आयु--ये तीन परस्पर भिन्न धर्म है।, कदाचित् इनका परस्पर सम्बन्ध भी बताया जा सकेगा, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से इस भेद का अनुभव कीजिए। शरीर निर्दोष होने से आरोग्य और दीर्घ आयु अवश्य प्राप्त हो सकती है, बल अन्य कारणों पर निर्भर है। पहलवान बल सम्पादन करते हैं, परन्तु साथ-साथ शरीर को निर्दोष न रखने के कारण आरोग्य और दीर्घ आयु उनको नहीं मिलती। यह बात एक देह के विषय में हो गई। साधारण मनुष्यों में शारीरिक बल को धारण करनेवाले बहुत मिल सकते हैं, परन्तु सूक्ष्म और कारण देहों का बल प्राप्त करनेवाले क्वचित् किसी स्थान पर होंगे।

सूक्ष्मदेह के विकास के साथ प्रबल इच्छाशक्ति होती है। अपने देह में तथा अन्यों के देहों में अभीष्ट स्थिति केवल इच्छाशक्ति से उत्पन्न करने की सिद्धि जिनको होती है 'सज्जनों का सूक्ष्मदेह विकसित हुआ है,' ऐसा समझिए। बड़े-बड़े प्रबन्ध के कार्य करनेवाले, उद्यमी, साहसी, उत्तम वक्ता, सेनानी, राष्ट्र के नेता, उदारबुद्धि पुरुष जिनके पीछे सहस्त्रों मनुष्य चलते हैं, उनकी इच्छाशक्ति की प्रबलता विलक्षण होती है, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। साधारण जनों से ये नर विशेष शक्तिशाली होते हैं इसका उक्त हेतु है। कारण देह का विकास इससे कठिन है। साधु, सत्पुरुष, सन्त, मुनि, ऋषि, महन्त आदि जो धार्मिक क्षेत्र में बड़े निःश्रेयस सम्पन्न महान् आत्मा होते हैं, उनका शरीर बड़ा विकसित हुआ होता है। इनसे सुविचार का स्त्रोत जनता में फैलता है। इस प्रकार इन शरीरों का विकास होने से किस शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, इसका संक्षेप से वर्णन यहाँ हुआ, क्योंकि विस्तारपूर्वक वर्णन करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

इन शरीरों को निर्दोष और बलवान् बनाना धर्म के नियमों का मुख्य उद्देश्य है। मतमतान्तर और धर्म में यही भेद है। मतमतान्तर वाले अपने-अपने मत की स्थापना और प्रगति करने के लिए विशेष ढ़ोग

की रचना करते हैं। धर्म के नियमों में वैसी बात नहीं होती। धर्म मनुष्य की अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि करना चाहता है, परन्तु मतमतान्तर अपने-अपने जत्थे बनाना चाहते हैं। इस प्रकार धर्म के नियम सर्वसाधारण मानवी उन्नति के लिए होते हैं और यह उन्नति उक्त देहों के विकास के साथ सम्बन्ध रखती है। मानवी धर्म के नियमों का जो पालन करते हैं, उनकी इस प्रकार उन्नति होती है।

इसलिए सच्चा धार्मिक मनुष्य मृत्यु से घबराता नहीं, क्योंकि मृत्यु की व्यवस्था को उसको ठीक-ठीक पता होता है। उक्त तीन देह एक के अन्दर दूसरा और दूसरे के अन्दर तीसरा, ऐस रहते हैं और प्रत्येक देह के रंग, रूप, आकार उस मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल होते हैं। सात्त्विक मनुष्य का शुभ्र वर्ण, राजसिक मनुष्य का पीत अथवा रक्तवर्ण होते हैं। तामसिक मनुष्य का नील अथवा कृष्णवर्ण प्रसिद्ध ही है। धार्मिक मनुष्य इन देहों की व्यवस्था को जानता है, इसलिए मृत्यु को वह ऐसा ही समझता है कि जैसा "पुराने कपड़े उतारकर नये पहनना" होता है। मनुष्य अपने शरीर पर कुर्ता, अंगरखा और दुशाला पहनता है। दुशाला फटने पर उसको उतार देगा और दूसरा नया पहनेगा। इसी प्रकार जीवात्मा कारण शरीर का कुरता, सूक्ष्म शरीर का अंगरखा और स्थूल शरीर का दुशाला पहनता है। जिस समय यह फट जाता है उस समय इसको उतारकर दूसरा पहनने की तैयारी करता है, यही मृत्यु है। इसीतिए यह आवश्यक भी है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्णचन्द्र जी ने भी कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता० अ० २। २२॥

अथवा यों समझिए कि घर के बाहर शहर में जाने के लिए अनेक कपड़े पहने जाते हैं और घर पर आकर उतारे जाते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा अपने घर से जब जगत् में आने लगता है तब वह उक्त वस्त्र पहनता है, परन्तु जब यह अपने घर वापस जाता है, तब कपड़ों का उतारता है। यह कपड़ों को उतारना ही मृत्यु है, परन्तु इस मृत्यु के कारण जीवात्मा को वह आनन्द और आराम मिलता है, कि जो घर में आने से एक उत्तम गृहस्थी को मिलता है; वास्तविक रीति से इससे भी अधिक आराम उसमें है।

इस आराम का अल्प अंश प्रतिदिन निद्रा में हरएक प्राणी को मिलता है। यही आनन्द विशेष दीर्घकाल पर्यन्त मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होता है। यही आनन्द समाधि द्वारा ज्ञानपूर्ण होने के कारण सात्त्विक आनन्द के रूप में योगी को मिलता है और उसी समाधि के आनन्द का विस्तार मुक्ति में है।

निद्रा, मृत्यु, समाधि, मुक्ति आदि में तम और सत्व का जो भेद है वह पाठक विचार से जान सकते हैं। जब उनके मन में उक्त कल्पना ठीक प्रकार आ जाएगी तब उनको मृत्यु की ठीक कल्पना हो सकती है।

(६) इच्छा मरण की सिद्धि

योग द्वारा इच्छा मरण की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। योगी अपनी इच्छा से जिस समय चाहे मर सकता है। रोगादिकों से मरना साधारण मनुष्यों के लिए है। पूर्ण दीर्घ आयु का उपभोग कर अपना इस लोक का धार्मिक कार्य समाप्त करके, अपनी इच्छा से प्राणों का निरोध करके मरना इच्छा मरण कहलाता है। प्राणायाम की सिद्धि होने के पश्चात् यह अधिकार प्राप्त हो सकता है।

स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्मदेह का प्राण सम्बन्ध है। प्राणायाम से यह सम्बन्ध बलिष्ठ होता है, इसलिए योग्य रीति से प्राणायाम की सिद्धि प्राप्त करनेवाला अकालमृत्यु से मरेगा नहीं, तथा अपनी इच्छा से इस सम्बन्ध को जब चाहे तोड़ भी सकता है; इसलिए उसको इच्छा मरण साध्य हो सकता है।

यदि ऐसा है तो हरएक इच्छा मरणी को क्यों नहीं होता? ऐसा प्रश्न यहाँ कई सज्जन कर सकते हैं। उत्तर में निवेदन है कि इस प्रकार की सिद्धि होने के लिए पहली आवश्यकता माता-पिता के शुद्ध रज-वीर्य से उत्पत्ति की है। घर के और परिवार के लोग धार्मिक और योगसाधना करनेवाले हों तो बड़ा ही अच्छा है। देश दुर्भिक्ष से रहित और नीरोग होना चाहिए, समाज निरुपद्रवी चाहिए। आठ वर्ष की आयु से प्राणायाम का अभ्यास विधिपूर्वक होना चाहिए। उसकी परिस्थिति ऐसी होनी चाहिए कि चिन्ता, द्वेष, ईर्ष्या आदि उसके पास न आ सकें तथा अन्य प्रकार से सब धार्मिक और यौगिक वायुमण्डल में उसका प्राथमिक आयु व्यतीत होना चाहिए। तब कहीं उसके प्राण वश में हो सकता है और प्राण वश में होने से उक्त सिद्धि हो सकती है।

साधारणतः विलक्षण इच्छा शक्ति के प्रभाव से भी कुछ दिन तक अपना मृत्यु दूर किया जा सकता है, अथवा पास भी लाया ज़ा सकता है। तात्पर्य इच्छामरण की सिद्धि काल्पनिक नहीं है। विचारी पाठक अपनी कल्पना से उसका थोड़ा-सा अनुभव भी कर सकते हैं।

जब ग्राम में हैजे आदि की बिमारी फैलती है, तब मन के दुर्बल मनुष्य समझने लगते हैं कि "शायद यह हैज़ा मुझे होगा और मैं मर जाऊँगा।" निरन्तर ऐसे क्षुद्र विचार मन में रहने के कारण इच्छाशक्ति कमजोर होती है और उससे उनका शरीर बीमारी बढ़ने के लिए अनुकूल बन जाता है। अन्त में वह उस बीमारी से मर जाता है। पाठक विचार करेंगे तो यह भी इच्छामरण ही है, परन्तु इसमें मृत्यु को पास बुलाया गया है। यही शक्ति विरुद्ध रूप से काम में लायी जाएगी तो मृत्यु दूर भी हो सकता है। "मैं परमेश्वर का भक्त हूँ, इसलिए मैं अकाल में नहीं मर सकता" इस विचार को प्रभु की भक्ति के साथ मन में परिपुष्ट करने से इच्छाशक्ति बलवान् होती है और उसके कारण शरीर भी रोगों का निवारण करने के योग्य हो जाता है। इस प्रकार भी मृत्यु दूर होता है।

इस विषय में इतनी बात स्मरण रखनी चाहिए कि केवल इतने से ही सम्पूर्ण कार्यभाग नहीं होगा, जो बहुत-से इसके नियम हैं, उनका क्रमशः विचार योगविषयक निबन्धों में होगा। यहाँ संक्षेप से सूचनामात्र लिखा है। जो लोग उत्तर आयु में प्राणायामादि प्रयत्न करेंगे उनको कुछ-न-कुछ लाभ होगा ही, परन्तु प्रथम आयु से योग्य प्रयत्न करनेवालों के समान उनको लाभ नहीं हो सकता। तथापि प्रत्येक को प्रत्येक उम्र में योग्य रीति से अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि प्रयत्न करने से कुछ-न-कुछ योग का बल प्राप्त होता ही है।

(७) अमरत्व की प्राप्ति

अमरत्व की प्राप्ति होती है, ऐसा निश्चय से उपदेश करने वाले मन्त्र वेद में अनेक हैं। यदि योग आदि साधनों से मृत्यु हट जाता है, तो ऋषि-मुनियों का मृत्यु क्यों हुआ? ऐसा प्रश्न यहाँ उपस्थित हो सकता है। उसके उत्तर में निवेदन है कि मृत्यु जो होता है, वह स्थूल शरीर का होता है। कारण शरीर का मृत्यु नहीं होता। कारण शरीर में आत्मा रहता है। यदि योग के ध्यान धारणादि साधनों से यह अनुभव मनुष्य को हो जाएगा कि मैं कारण शरीर का निवासी हूँ और स्थूल

शरीर बनता और बिगड़ता है तो उसको अनुभव आ जाएगा कि जो मृत्यु आता है, वह मेरे साधन को छिन्न-भिन्न करता है और साधन के नष्ट होने पर भी मैं पूर्ववत् ही रहता हूँ तथा स्थूल शरीर के मृत्यु के कारण मुझमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इस ज्ञान और अनुभव के पश्चात् उसको अमरपन का ही सदा अनुभव रहेगा और अपने शरीर का नाश देखता हुआ भी वह अपने अमरत्व में मस्त रहेगा।

उदाहरण के लिए हम अपने मकान का विचार करेंगे। मकान टूट जाने पर भी घर का स्वामी अपने-आपको वैसा ही अमर समझता है जैसे पहले समझता था। घर के टूटने से कोई भी मनुष्य अपने-आपको खण्डित नहीं समझता, इसका हेतु यही है कि वह अपने-आपको घर से पूर्णतया भिन्न समझता है। जो योगी इस प्रकार अपने-आपको इस स्थूलशरीर से भिन्न समझेगा, उसको इस देह के मृत्यु के साथ अपने मर जाने की कल्पना भी नहीं होगी, क्योंकि वह अपने-आपको देह से भिन्न ही मानता है।

अपने-आपको देह से भिन्न अनुभव करने की सुगम रीति यह है कि प्रतिदिन निद्रा आने के समय की अवस्था की विचार करना। उस सूक्ष्म समय में जो अनुभव होता है उसकी कल्पना होने से "मैं इस स्थूल शरीर से भिन्न हूँ" इसका अनुभव हो सकता है। पाठक इस प्रकार अपने भिन्नत्व का अनुभव ले सकते हैं। योग से जो प्रत्यक्षता है वह कष्टसाध्य है, परन्तु यह उपाय अत्यन्त सुगम है और हरएक कर सकता है।

इस प्रकार अपने-आपको स्थूलशरीर से अलग अनुभव करने पर, स्थूलशरीर टूटने की अवस्था में भी वह अपने-आपको वैसा ही परिपूर्ण अनुभव करेगा और दूसरा स्थूलशरीर मिलने पर भी उसको साधनरूप मानकर स्वयं अपने-आपको अलग मानेगा। यही अमरत्व है और धर्म के विविध साधनों से यही अनुभव प्राप्त करना है। आशा है कि पाठक इस अनुभव का प्राप्त करने के प्रयत्न में अपनी पराकाष्ठा करेंगे।

मृत्यु के विषय में सामान्य विवरण इस प्रकार हो गया है। अब वेद में मृत्यु के विषय में जो उपदेश आ गये हैं उनका सारांश रूप से विचार करना है।

मृत्यु के विषय में वेद का उपदेश

वेद में मृत्यु के विषय में अनेक प्रकार के उपदेश हैं। उन सबका विचार करना बड़े ही प्रयास का कार्य है। यहाँ सारांशरूप से और संक्षेप से उसका विचार करना है।

(१) यमदूत और मृत्युपाश

वेद में यमदूतों और मृत्यु के पाशों का वर्णन भिन्न प्रकार आया है।

मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा॥ १०॥
नयताऽमून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत।
परः सहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य॥ ११॥

—अथर्व०८। ८। १०॥

"मैं इन शत्रओं को मृत्यु के पास भेजता हूँ ये मृत्यु के पाशों से बँधे हैं। इनको बाँधकर मृत्यु के निकृष्ट दूतों के पास मैं ले जाता हूँ। हे मृत्यु के दूतों ! हे यम के दूतो! इनको बाँधो और ले जाओ! शत्रु के हजारों मर जाएँ। (भवस्य) सबके उन्पन्नकर्त्ता ईश्वर के शस्त्र इनको काटें।"

शत्रुओं के विषय में वीर पुरुषों के भाव इन मन्त्रों में व्यक्त हुए हैं। वीर पुरुष यमदूतों, यमपाशों और मृत्युदूतो से नहीं डरते हैं, प्रत्युत अपने शत्रुओं को मृत्यु के पाशों से बांधकर पास पहुँचाते हैं। स्वयं मृत्युपाशों से न डरना, परन्तु शत्रुओं को मृत्यु के हवाले करने का शौर्य बताना, ये भाव इन मन्त्रों में है। तथा और भी देखिए—

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे।
अमुष्या हंतु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः॥

—अथर्व० ८। ८। १६॥

"ये फैले हुए मृत्युपाश हैं, इनका आक्रमण होने पर तुम छूट नहीं सकते। इस (कूटं) कूट युद्ध से इस शत्रु की सेना के हज़ारों आदमी मर जाएँ।"

इस मन्त्र में स्वकीय वीर ही मृत्यु के फैले हुए पाश हैं, जिनका आक्रमण होने पर शत्रु के सैनिक बच नहीं सकते, यह भाव स्पष्ट है। शूर पुरुषों का सैन्य सचमुच दुष्ट शत्रुओं के लिए मृत्यु के फैले हुए

पाशों के समान ही होता है। यम का अर्थ राष्ट्र का नियमन करनेवाला राजा और उसके दूत राष्ट्र संरक्षक शूर सैनिक यह तात्पर्य उक्त मन्त्रों से निकलता है। इनके अतिरिक्त भी मृत्यु के पाश हैं उनको निम्न मन्त्र में देखिए—

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वतः उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्।
व्युच्छंतीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्त्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्॥

—अथर्व० १७।१।३०॥

"अग्नि सब प्रकार से मेरा रक्षण करे, उदय होनेवाला सूर्य मृत्यु के सब पाशों को दूर करे, उषःकाल और स्थिर पर्वत सहस्त्रों प्रकार से मेरे अन्दर प्राणों का संवर्धन करें।"

इस मन्त्र में वैयक्तिक मृत्युपाशों का वर्णन है। हवन की अग्नि, दिनभर प्रकाश करनेवाला सूर्य, उषःकाल का और पहाड़ों का शुद्धवायु प्राण की स्थापना द्वारा मृत्यु के पाशों को दूर करते हैं; यह मन्त्र आयुष्यवर्धन की युक्ति बता रहा है, इसलिए पाठक इसका विशेष विचार करें। हवन के अग्नि द्वारा आयुष्य का संवर्धन होता है, इसका वर्णन "हवन चिकित्सा" के प्रसंग में हुआ है। सूर्य अपने किरणों द्वारा रोगजीवों को दूर करता है यह बात "सौरचिकित्सा" के वर्णन में बताई है। उषःकाल की शुद्ध हवा और पहाड़ों का पवित्र वायु आरोग्यवर्धक है, इस विषय में सब जानते ही हैं। इनके द्वारा मृत्यु के पाश दूर किये जा सकते हैं। और मनुष्य दीर्घजीवी बन सकता है। इसलिए (१) हवन, (२) सूर्यप्रकाश का सेवन, (३) उषःकाल में हवाखोरी और (४) पहाड़ों की सैर इन चार बातों को करके पाठक मृत्यु के पाश तोड़ सकते हैं। तथा—

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ्‍ त्वा हरामि शतशारदाय।
अव मुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि॥

—अथर्व० ८।२।२॥

"(जीवतां ज्योतिः) जीवित लोगों के तेज के पास आओ। तुमको सौ वर्ष के दीर्घ आयु तक चलाता हूँ। मृत्यु के पाशों को तथा (अशस्तिं) अप्रशास्तता को दूर करके तेरे लिए दीर्घ आयु अर्पण करता हूँ।"

जीवित और जागृत लोगों के तेज के पास रहना चाहिए और अप्रशस्त अर्थात् निन्दनीय भावों को दूर करना चाहिए। ये दो उपाय हैं कि जिससे दीर्घजीवन प्राप्त हो सकता है। जीवित मनुष्यों के तेज के

साथ रहना चाहिए। एक जीवित मनुष्य होते हैं। उत्साही पौरुष का जीवन व्यतीत करनेवाले लोग जीवित मनुष्य कहलाते हैं। इनके तेज के साथ रहने से अपने अन्दर भी उत्साह आ जाता है और उत्साह ही जीवन का स्रोत है। दूसरी बात निन्दनीय हीन भावों को दूर करना है। हीन भावों को धारण करने से मन दूषित होता है और मन के दोष से आयु अल्प होती है। तथा अन्य प्रकार के जो मृत्यु के पाश होंगे, उनको भी दूर करना चाहिए और दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहिए। जो मनुष्य समझते हैं कि आयु निश्चित होती है उनको इस मन्त्र का विचार करना चाहिए। मृत्यु के पाशों की कल्पना निम्न मन्त्रों से आ सकती है। देखिए–

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान्॥ ११॥
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो य त्सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि॥ १२॥–अथर्व० ८।२

"तेरे लिए मैं प्राण और अपान, (जरां मृत्युं) वृद्धावस्था के पश्चात् मृत्यु, दीर्घ आयुष्य, (स्वस्ति) आरोग्य देता हूँ। वैवस्वत यम से भेजे हुए यमदूतों को मैं दूर करता हूँ। (अरातिं) ईर्ष्या, द्वेष, द्रोह, (निर्ऋतिं) रीति और विधि के विरुद्ध आचरण, (ग्राहिं) बड़ी देर तक चलनेवाली बीमारी, (क्रव्यादः) मांस को क्षीण करनेवाले रोग, (पिशाचान्) रक्तदोष करनेवाले रोगबीज, (रक्षः–क्षरः) क्षय उत्पन्न करनेवाले रोगबीज, (दुर्भूतं) बुरी रीति से रहने का अभ्यास आदि जो कुछ है उसको मैं दूर करता हूँ जैसे प्रकाश अन्धेरे को दूर करता है।"

ये ही यमदूत है। इनमें कई अपने ही बुरे वयवहार से उत्पन्न हुए हैं, अन्य दोष अन्य प्रकार से उत्पन्न होते हैं। इनमें "रक्षः, पिशाचः" वगैरह जो रोग बीज हैं उनको अग्नि, सूर्य आदि नाश करते हैं, ऐसा वेदमन्त्रों में अन्यत्र कहा है। जो मनुष्य दीर्घ आयु और आरोग्य प्राप्त करना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे इन बुराईयों को प्रथम दूर करें। यमदूत और यमपाश दूर किये जा सकते हैं, क्योंकि उक्त मन्त्र में कहा है कि–

सर्वान् यमदूतान् अप सेधामि।

"सब यमदूतों को मैं ढूँढ़–ढूँढ़कर निकाल देता हूँ।" पुरुषार्थी मनुष्य उनको योगादि साधनों से दूर कर सकता है और प्रयत्न से

आरोग्य और दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार यह मृत्युपाशों का स्वरूप है और ये यमदूत हैं। इनको दूर करने के लिए धार्मिक आचरण और योगसाधन ये उपाय हैं।

(२) मृत्यु की सत्ता

मृत्यु क्या है और वह रहता कहाँ है, इसका थोड़ा-सा विचार करना चाहिए। पूर्वमन्त्रों में "वैवस्वत यम" शब्द हैं। विवस्वान् सूर्य होता है, उससे उत्पन्न हुआ यम है। यह "यम" शब्द कालवाचक है। सूर्य और काल ये आयु को प्रतिसमय क्षीण करते हैं, परन्तु सूर्य प्रकाश के सेवन से आयुष्य की वृद्धि होती है। इस प्रकार यह अन्योन्याश्रय है। काल अथवा समय ही यम है, तथा–

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकं।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥ १॥

–ऋ० १०।५८

"जो तेरा वैवस्वत यम मन दूर-दूर भटकता है, उसको वापस लाकर तेरा दीर्घ आयु बनाता हूँ।"

इस मन्त्र में मन ही वैवस्वत यम है, ऐसा स्पष्ट कहा है। अपने शरीर में जो मन है वही वैवस्वत यम है यही मन मनुष्य को मारक और तारक भी होता है। मन ही बन्ध और मोक्ष का कारण है[1]। यह मन हमारे शरीर में यम है, बाह्य जगत् में काल अथवा यमस यम हैं। अपने मन के विचारों का निरीक्षण करने से हम ही अपने लिए केसे मृत्यु के पाश और ज़ाल फैलाते हैं, इसका विचार स्पष्ट हो सकता है। काल का विचार छोड़ दें, परन्तु कम-से-कम हमारे मन के कारण तो हमारा मृत्यु पास नहीं आना चाहिए। इसलिए पाठको! अपने मन में पूर्णता के आरोग्यमय सुविचार धारण कीजिए और अपने मृत्यु को दूर कीजिए। तथा–

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

–ऋ० १०।१२१।२; यजु० २५।१३

"जो अत्मिक सामर्थ्य और शारीरिक बल देनेवाला है, जिसकी सब देव उपासना करते हैं, जिसकी शीतल छाया ही अमृत है और जिससे दूर

१. मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। मै0 उ0 ६। ३८॥

होना ही मृत्यु है, उस सुखपूर्ण देव की अर्पण द्वारा पूजा करते हैं।"

यह मन्त्र परमात्मा, जीवात्मा और मन के प्रभाव का वर्णन कर रहा है। परमात्मा पक्ष में "देवाः" शब्द का अर्थ अग्नि सूर्य आदि है और जीवात्मा तथा मन के पक्ष में "देवाः" शब्द इन्द्रियवाचक है। मन के पक्ष में इसका अर्थ निम्न प्रकार हो सकता है—"जो आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाता है जिसकी उपासना सब इन्द्रियाँ करती हैं, जिसके पास अमृत है और जिसका वियोग ही मृत्यु है उस आनन्दवर्धक दिव्य मन की त्याग द्वारा पूजा करेंगे।" मन के सुविचारों के कारण मनुष्य का बल बढ़ता है और हीन विचारों के कारण क्षीणता आती है, इस अनुभव को मन में धारण करके उक्त अर्थ देखना चाहिए। इस अर्थ को लेने से अपने मन के सामर्थ्य की कल्पना हो सकती है। तथा इसका परमात्मा पर अर्थ देखने से विदित हो सकता है कि परमात्मभक्ति से अमरत्व की प्राप्ति और परमात्मा से विमुख होने से मृत्यु होता है। इसलिए जो पाठक मृत्यु को दूर करना चाहते हैं, वे ईश्वरभक्ति अवश्य किया करें, क्योंकि उससे बल बढ़ जाता है। इस ईश्वरभक्ति से मृत्यु का भय दूर हो जाता, देखिए—

वेदाऽहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय॥

—यजु० ३१।१८

"जो अन्धकार से परे, सूर्य के समान तेजस्वी और महान् पुरुष है उसको मैं जानता हूँ। उसको जानने से ही मृत्यु के पार हो सकता है। मृत्यु दूर करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

मृत्यु दूर करने का सामर्थ्य परमेश्वर की भक्ति में है। परमेश्वर की भक्ति आत्मा का सामर्थ्य बढ़ाता है, आत्मिक बल से मन की शक्ति विस्तृत होती है और मन की शक्ति विस्तृत होने से मृत्यु का भय निवृत होता है, इसका स्पष्टीकरण पूर्वभाग में दिया ही है। इस प्रकार मृत्यु की सत्ता आत्मिक बल के अभाव में है। इसलिए मृत्यु को दूर करनेवालों को उचित है कि वे अपने अन्दर आत्मिक बल बढ़ावें और मृत्यु का भय दूर करें।

(३) मृत्यु को हटाने की विधि

अब मृत्यु दूर करने के उपाय का विचार करना है। निम्न मन्त्र में मृत्यु को हटाने की विधि देखने योग्य है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व राभरत्॥

—अथर्व० ११।५।१९

"ब्रह्मचर्य के तप से देव मृत्यु को हटाते हैं इन्द्र निश्चय से ब्रह्मचर्य द्वारा ही देवों का तेज बढ़ाता है।"

'ब्रह्मचर्य' शब्द के अनेक अर्थ हैं, (१) ब्रह्म अर्थात् महान् होने के लिए योग्य आचरण करना, (२) ईश्वर के साथ रहना, आस्तिक्य धारण करना, (३) ज्ञान के अनुकूल व्यवहार करना, (४) सत्यनिष्ठ होना, (५) आत्मा के साथ रहना, (६) वीर्यरक्षण और सुनियमों के अनुकूल आचरण करना। इत्यादि नियमों के द्वारा देव अर्थात् ज्ञानी विद्वान् और इन्द्रियाँ मृत्यु को जीतती हैं और इन्द्र अर्थात् आत्मा इन्द्रियों के अन्दर तेज की स्थापना करता है। मृत्यु को हटाने का यह उपाय है। एक ब्रह्मचर्य शब्द के अन्दर सभी शुभ नियमों को अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार के शुभ नियमों के अनुकूल जो अपने चाल-चलन रखता है वही निम्न बल प्राप्त कर सकता है—

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय॥

—अथर्व० ३।११।२

"यद्यपि इसकी आयु क्षीण हुई हो, यदि यह प्रायः मर चुका हो, यदि यह मृत्यु के पास गया हो तो भी इसको उस विनाश के समीप से मैं वापस लाता हूँ और सौ वर्ष के जीवन के लिए (अस्पार्श) बलवान् करता हूँ।"

यह आत्मिक शक्ति का प्रभाव है, जिसके अन्दर आत्मिक शक्ति का परिपूर्ण विकास हो गया है, वही इस प्रकार रोगी को दीर्घ जीवन के लिए बलवान् बना सकता है। हवन-चिकित्सा के सूक्त में यह मन्त्र है। यज्ञ द्वारा इस प्रकार बीमार को फिर नवजीवन दिया जा सकता है। तथा—

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि॥

—अथर्व० ६।१३३।३

"मैं अब मृत्यु का ब्रह्मचारी हूँ। सब जीव लोक से यम के लिए

समर्पित होनेवाले को चाहता हूँ। इसलिए मैं ज्ञान, तप, परिश्रम आदि से तथा इस मेखला से उसको बांधता हूँ।"

जो बड़े लोग होते हैं अपने-आपको मृत्यु के मुख में रख देते हैं। सब जनता की भलाई का साधन करने के लिए वे अपना कदम मृत्यु के जबड़े में धर देते हैं। इतना धैर्य और इतनी उदारता धारण करने के पश्चात् उनके मन में मृत्यु का भय नहीं रह सकता। वे सब प्रकार से निडर होकर अपना लोक कल्याण का पवित्र कार्य करते रहते हैं। इस प्रकार निडर होकर जो लोग पवित्र कार्य में आत्मार्पण करते हैं वे ज्ञान, तप, परिश्रम, पुरुषार्थ तथा मेखला आदि कमरबन्धों से उसको ही बांधते हैं और उसको अपने ही आधीन कर लेते हैं, अर्थात् अन्य जन मृत्यु के आधीन रहते हैं, परन्तु ये सत्पुरुष मृत्यु को अपने आधीन करते हैं। तात्पर्य यदि आप डर जाएँगे तो मृत्यु आपको खा जाएगी और यदि निडर बनेंगे, तो मृत्यु आपके आधीन रहेगी। इसलिए धैर्य के साथ प्रशस्ततम कर्म करने में अपने-आपको समर्पित करना चाहिए और इस अर्पण से मृत्यु को वश में करना चाहिए। तथा-

आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगाद्वशम्।।

-अथर्व० १९।२७।८

"दीर्घ आयु प्राप्त करनेवालों के समान अधिक आयु प्राप्त करके जीओ। दीर्घ आयु धारण करके जीओ, मत मरो। आत्मिक बल धारण करनेवालों के समान प्राणशक्ति के साथ जीओ। (मृत्यो) मृत्यु के (वशं) वश में (मा उत् अगात्) मत आओ।"

दीर्घ आयु प्राप्त करनेवाले पुरुषार्थी और आत्मिक बल धारण करनेवाले अध्यात्मनिष्ठ सत्पुरुष जिस प्रकार पुरुषार्थ करके अपना जीवन अति दीर्घ बनाते हैं, उस प्रकार हरएक मनुष्य को अपनी दीर्घ आयु बनानी चाहिए। कभी मृत्यु के वश में नहीं जाना चहिए, परन्तु अपनी इच्छा के आधीन ही मृत्यु को रखना चाहिए। तात्पर्य वेद के मत से मरने न मरने का प्रश्न पराधीन नहीं है, परन्तु अपने आधीन है। जो नियमानुकूल पूर्ण रीति से वर्ताव करेंगे वे इच्छानुकूल मरण प्राप्त कर सकते हैं। इस विषय में उक्त मन्त्र स्पष्ट ही है। पाठक इस मन्त्र के स्पष्ट आदेश का विचार करें।

मा मृत्योः उदगात् वशं॥

"मृत्यु के आधीन मत होवो।"

Submit not to the power of Death.

यह आज्ञा अत्यन्त स्पष्ट है और यह बताती है कि यदि मनुष्य योग्य रीति से प्रयत्न करेगा तो मृत्यु को हटा सकेगा। तथा और देखिए–

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधात् रणो वारयिष्यते।।

–अथर्व० १०।३।७

"द्रोह, नियमविरुद्ध आचरण, दुराचार, भय, मृत्यु और वध इनसे तेरा संरक्षण वरण कर सकता है।"

इस वरण के विषय में विस्तारपूर्वक अन्यत्र लिखेंगे, यहाँ इतना ही बताना है कि पुरुषार्थ से मृत्यु हटाना सम्भव है। और देखिए–

उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः।
मा च्छित्था अस् माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः॥ –अ० ८।१।४

"हे पुरुष (अतः उत्क्राम) इस अवस्था से ऊपर उठो, (मा अवपत्थाः) मत गिर जाओ। मृत्यु के (पड्वीशं) बन्धन से छूट जाओ। इस लोक से, अग्नि और सूर्य के तेज से दूर होओ।"

इस मन्त्र में भी उक्त प्रकार ही उपदेश है, इतना स्पष्ट उपदेश होने पर भी कई लोग कहते ही हैं कि आयु घट-बढ़ नहीं हो सकती, यह कितना आश्चर्य है? देखिए वेद कहता है कि–

पुरुष, अतः उत्क्राम। मा अव पत्थाः।
मृत्योः पड्वीशं अव मुञ्चमानः॥

O man! rise up from this place! sink not downward, casting away the bonosQ of Death that hold thee.

हे मनुष्य! उन्नत होओ, मत गिरो, मृत्यु के पाशों को तोड़ दो।

इतना स्पष्ट उपदेश है। इस प्रकार का बल जिस मन में होगा, वह मन निश्चय से मृत्यु को हटा सकता है। हे वैदिक धर्म के सज्जनों! मन में यह बल धारण करो, अपने-आपको हीन और दीन न समझो। तुम्हारे अन्दर मृत्यु के पाशों को तोड़ने की शक्ति है, उसका उपयोग करो और सब प्रकार का अभ्युदय और निःश्रेयस् प्राप्त करो। तथा और देखो–

उदेहि मृत्योर्गंभीरात् कृष्णाच्चित्त मसस्परि॥ ११॥
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥ १५॥

—अथर्व० ५।३०

"जिस प्रकार अन्धेरा छोड़कर ऊपर प्रकाश में आते हैं, उस प्रकार (गंभीरात्) गहन मृत्यु से (उदेहि) ऊपर उठो। अधिपति सूर्य अपने किरणों से तुझको मृत्यु से बचावे।"

मृत्यु का स्थान नीच अवस्था में है। वहाँ से उन्नत होने पर उच्च अवस्था में अमरत्व है। सूर्य किरणों की सहायता से मृत्यु का भय दूर हो सकता है। सूर्य किरणों का उपयोग और प्रयोग करके मृत्यु को हटाने की विधि वैद्य लोग प्रकाशित करें। वेद में अनेक स्थान पर सूर्य किरणों का सम्बन्ध दीर्घ आयु, आरोग्य और मृत्यु हटाने के साथ जोड़ा है। साधारणतः अपने रहने-सहने के स्थान में विपुल सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु होने से मृत्यु का भय हट सकता है। अन्धेरे कमरों में निवास करनेवाले भाई इस वेद मन्त्र से बहुत बोध ले सकते हैं। तथा—

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि॥

—अथर्व० १२।२।२

"पाप और दुराचार के कारण बनी हुई सब (यक्ष्मं) बीमारी कृति और अनुकृति द्वारा दूर करता हूँ और मृत्यु को हटाता हूँ।"

इस मन्त्र में रोगों की उत्पत्ति के कारण दिये हैं, पाप और दुराचार के कारण विविध रोग हैं, अर्थात् जो धार्मिक जीवन व्यतीत करेंगे और दुराचार में प्रवृत्त नहीं होंगे वे रोगी नहीं हो सकते। इस मन्त्र के "कर और अनुकर" शब्द मन्त्रशास्त्र और औषधि विद्या के सांकेतिक शब्द हैं, इसलिए जो इन विद्याओं के साथ परिचित होंगे वे ही इन संकेतों का विवरण कर सकते हैं। इस मन्त्र के उत्तरार्ध से यह बात स्पष्ट होती है कि रोग और मृत्यु अनुकूल पुरुषार्थों के द्वारा दूर किये जा सकते हैं। इसीलिए निम्न भाव धारण करने का अत्यन्त महत्त्व है—

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न एतु।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यमं गुः॥

—अथर्व० १८।३।६३

"विवस्वान् हम सबको अमृत में रखे। मृत्यु दूर होवे और अमृत

हमारे पास आवे। इन पुरुषों की वृद्धावस्था तक रक्षा होवे और इनके प्राण यम के प्रति न जावें।"

ऊपर के तात्पर्य के साथ इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए। सूर्य का सम्बन्ध अमृतत्व के और मृत्यु को हटाने के साथ जोड़ा है। यह भाव अपने मन में धारण करना चाहिए। जिससे मनुष्यों को विश्वास हो सकता है और जिनका विश्वास होता है वे ही पुरुषार्थ के द्वारा मृत्यु को हटा सकते हैं। तथा–

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयांचकार॥

–अथर्व० १८।२।२७

"मनुष्य अपने घरों से इस मृत्यु को दूर करते हैं और ग्रामों से भी हटाते हैं। मृत्यु यम का दूत है वह पितरों से प्राणों को प्राप्त करता है।"

घरों और ग्रामों से मृत्यु को हटाने का भाव उक्त मन्त्र में है। आरोग्यवर्धक सुनियमों के पालन से, ग्राम रक्षा के नियमों के सुयोग्य प्रबन्ध से, गृहमेधादिकों के साधनों से मृत्यु को दूर किया जा सकता है। व्यक्ति, कुटुम्ब, ग्राम, प्रान्त, समाज, जाति, देश, राष्ट्र इनका आरोग्य बढ़ाना मनुष्यों के आधीन है यह इस मन्त्र का आशय है। जिस प्रमाण से आरोग्य बढ़ेगा उस प्रमाण से मृत्यु दूर हो सकता है। और एक आश्चर्यकारक मन्त्र देखिए–

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे॥
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः॥

–अथर्व० ५।३०।१७

"यह (लोकः) मनुष्य देह देवों को अत्यन्त प्रिय और अपराजित है। हे मनुष्य! जब तू जन्म लेता है तब तू यहाँ मृत्यु के लिए समर्पित होता है। इसलिए तुमको कहता हूँ कि तू (जरसः पुरा) वृद्धावस्था के पूर्व (मा मृथाः) मत मरो।"

मनुष्य का शरीर यह देवों का प्रिय स्थान है। इसको अपने प्रयत्न से भी देवों को मन्दिर बनाना चाहिए। यदि देवों के अनुकूल इसको रखा जाए, तो व्याधि कुविचार आदि द्वारा इसका पराभव नहीं होता। यह सदा अपराजित रहता हुआ देवों का कार्यक्षेत्र बनता है। अन्यथा

साधारण लोग इसको राक्षसों और पिशाचों का स्थान बनाकर रोगों से परास्त कर देते हैं। यह उचित नहीं है।

जब मनुष्य जन्म लेता है उसी समय मृत्यु उसके पीछे लगता है। मृत्यु समय देखता रहता है, दोष का स्थान प्राप्त होते ही उसको पकड़ता है, इसलिए सदा सावधान रहना चाहिए। इस कारण वेद ने कहा है कि–

"मा पुरा जरसो मृथाः॥" –अथर्व० ५।३०।१७

You must not die before the natural termination of your life in extreme old age.

"अत्यन्त वृद्ध अवस्था के पूर्व मत मर जाओ।"

पाठकों को यह वेद का आदेश ध्यान में रखने योग्य है। वृद्धावस्था तक जनता के राष्ट्रहित के महान् कर्त्तव्य करने के पश्चात् मरना है, उस काल के पूर्व मरना नहीं है। मनुष्यों का आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे इस वेद की आज्ञा का पालन हो सके। अब यहाँ निम्न मन्त्र देखिए–

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम्।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे॥

–अथर्व० ६।७६।३

"क्षत्रिय के द्वारा रखी हुई इसकी समिधा को जो जानता है वह (अभिह्वारे) कुटिल मार्ग में मृत्यु के लिए अपना (पदं) पाँव (न निदधाति) नहीं रखता।"

मनुष्य के शरीर में जीवात्मा क्षत्रिय है क्योंकि सब प्रकार के क्षतो, व्रणों और दोषों से वही त्राण किंवा रक्षण करता है। इस क्षत्रिय द्वारा इस पुरुषरूपी यज्ञ में समिधाएँ डाली जाती है। यह यजमान इस शरीर में यज्ञ कर रहा है और यह शरीर यज्ञमण्डप है। इस प्रकार अपने शरीर को यज्ञरूप जो जानता है वह कुटिल मार्ग में जाता है वही मृत्यु के वश में होता है, परन्तु जो सीधे सत्यमार्ग से जाता है वह मृत्यु को दूर करता है। इस मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि सीधा मार्ग ही अमरत्व प्राप्त करनेवाला है। सत्य मानवी धर्म का मार्ग ही सीधा है यह बात सुप्रसिद्ध ही है। इसलिए कहा है–

परं मृत्यो अनु परेहि पंथां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्॥

—यजु० ३४।७

"हे मृत्यो! (देवयानात्) देवों के सीधे मार्ग को छोड़कर जो (अन्यः) दूसरा टेढ़ा मार्ग है उस मार्ग से दूर भागो।"

देवों के सरल मार्ग पर मृत्यु का भय नहीं है। इसलिए अपने आपको देवों का पवित्र स्थान बनाना चाहिये और ऋषियों का पवित्र स्थान यज्ञमण्डप बनाना चाहिए, तभी मृत्यु दूर हो सकती है।

इस प्रकार से मृत्यु को दूर हटाने के विषय में वेद की स्पष्ट आज्ञा है। प्रत्येक मन्त्र का सूक्ष्म विचार करेंगे तो उनको प्रत्येक मन्त्र से, मन्त्र के बहुत शब्दों से भी, अनुपम बोध प्राप्त हो सकता है कि जिससे मृत्यु दूर किया जा सकता है।

मृत्यु का प्रश्न सभी मनुष्यों के सम्मुख है। इसके विषय में अनके प्रश्न उत्पन्न होते हैं, उन सबका उत्तर वैदिक प्रमाणों द्वारा दिया जा सकता है, परन्तु ऐसा करने के लिए ग्रन्थ का विस्तार बहुत होगा। जब कभी वैसा अनुकूल समय मिलेगा जब इस विषय पर सम्पूर्ण वेद मन्त्रों के उद्घाटन के साथ पूरा-पूरा विचार पाठकों के सामने रखेंगे। इस समय अपने स्थान के अनुकूल विचार यहाँ प्रस्तुत किये हैं। आशा है कि प्रिय पाठक इनसे लाभ उठाएँगे।

बड़ों के पीछे छोटे जाने चाहिएँ, परन्तु जनता ऐसी आपत्ति में फँस गई है कि छोटी उम्रवाले ही पहले चले जाते हैं और बड़े पीछे रहते हैं। किस स्थान पर यह बिगाड़ हुआ है इसका विचार करना सब श्रेष्ठ विद्वानों का काम है। आशा है कि विचारशील श्रेष्ठ सज्जन इसका योग्य विचार करके उत्तम उपाय ढूँढेंगे और उससे जनता को लाभ पहुँचाएँगे। जब—

जीवेम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥ —यजु०३६।२४

इस मन्त्र के अनुकूल सब देशों में सब सज्जन पूर्ण आयु से सम्पन्न होंगे तभी कृतकारिता होनी है। क्या कोई इस रीति से कार्य करनेवाले हैं?

आयुष्य बढ़ाओ

वायु सूक्त।। —ऋ० १०।१८६

ऋषिः—उलो वातायनः।। देवता—वायुः।।

वात आ वातु भेषजं शम्भू मयो नो हृदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत्।। १।।
उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि।। २।।
यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।। ३।।

यह वायु सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल में है। इसक देवता 'वायु' है और ऋषि 'उलो वातायनः' है। 'वातायन' शब्द का अर्थ—A window, a bolcony, portico, porch, terrace on the roof of a house, a pavilion; खिड़की, झरोखा, बारजा, उसारा, दहलीज, ड्योढ़ी, चबूतरा, छत्ता, गुंबजदार घर, मण्डापकार घर, बारादरी, छज्जा, खुली हुई छत, बरामदा। 'उल' का अर्थ 'खुला, गमन करनेयोग्य, आने-जानेवाला, गतिमान'। उक्त दोनों शब्दों के अर्थ मिलाने से 'उलो वातायनः' का अर्थ निम्न प्रकार प्रतीत होता है—"खुली खिड़की, खुला बरामदा, खुला छत्ता, खली बारादरी' इत्यादि।

ऋषि के नाम के उक्त अर्थ पाठकों को विचारपूर्वक देखना चाहिए, क्योंकि इनमें एक बड़ी भारी विलक्षणता है। यह वायु सूक्त का ऋषि है, जिसका अर्थ 'खुली खिड़की' ऐसा होता है। ऋषि का नाम रखने में भी बड़ी चतुराई है। वायु देवता का ही 'खुला बरामदा' ऋषि हो सकता है। पर्जन्य, अग्नि आदि देवताओं का यह ऋषि नहीं है। यदि पर्जन्य के अथवा वृष्टि के समय खिड़की खुली रखी जाएगी, तो सम्भवतः अन्दर का मकान भीग सकता है, इसलिए वायु देवता के लिए ही यह ऋषि माना गया है।

परन्तु क्या यह आश्चर्य नहीं कि 'वायु' देवता का ऋषि 'खुली खिड़की' माना गया है!! यहाँ शंका मन में उठती है कि कदाचित् ये

ऋषियों के नाम विशेष संकेत से रखे गये हों। नहीं तो ऐसे अन्वर्थक नाम किस प्रकार आ सकते हैं? विशेष हेतु से ये नाम रखे होंगे, ऐसा यहाँ प्रतीत होता है। एक ही सूक्त के ऋषि के नाम से ऐसा अनुमान करना हमारे लिए उचित नहीं होगा, यह हम जानते हैं और यहाँ इतना ही कह देते हैं कि इस प्रकार कई अन्य सूक्तों के ऋषियों के नाम देखे हैं। इसलिए ऋषियों के विषय में किसी स्वतन्त्र निबन्ध में विचार किया जाएगा, ऐसा यहाँ कहकर, अपने प्रचलित वायु सूक्त का ही विचार यहाँ प्रस्तुत करेंगे।

उक्त वायु सूक्त के केवल तीन ही मन्त्र हैं, परन्तु उनमें आयुष्य वर्धन की साधक सब बातें उत्तम प्रकार से रखी हैं। देखिए–

(१) **वातः भेषजं वा वातु**–(May Vata breathe his healing balm on us)–वायु अपने रोग दूर करनेवाले गुणों को हमारे पास ले आवे।

वायु के अन्दर एक प्रकार का औषधि गुण है, जिससे रोग दूर हो सकते हैं। यह आशय उक्त मन्त्र भाग में स्पष्ट है। केवल वायु के सेवन से कई रोग दूर हो सकते हैं। 'भेषज' का अर्थ 'रोग दूर करने का औषध' है। वायु के अन्दर यह गुण है। वायु हम सबके पास अर्थात् हमारे घरों में खुली रीति से आवे-जावे और घरों में अपना औषधि का गुण रख देवे, जिसके सेवन करने से हम सब निर्दोष हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि घरों की ऐसी रचना होनी चाहिए कि जिससे वायु के प्रवेश अन्दर होने में किसी प्रकार की रुकावट अथवा प्रतिबन्ध न होवे। घर ऐसे ही बनाने चाहिएँ कि जिनसे सब कमरों में विस्तृत और प्रतिबन्ध रहित वातायनों से अर्थात् खिड़कियों द्वारा शुद्ध वायु सदा आ जा सके और रहनेवाले मनुष्यों को आरोग्य का प्रदान कर सके (Free Ventilation) घरों में शुद्ध हवा मुक्त द्वार से आना आवश्यक है, यह भाव यहाँ स्पष्ट है।

यदि घरों में मुक्त द्वार से हवा न आ सकेगी, तो उसका 'भेषज' गुण हम सबको प्राप्त नहीं होगा और हम नीरोग नहीं होंगे। वेद में घरों का नाम ही 'क्षय' है इसका तात्पर्य है कि 'घरों में निवास करने से मनुष्य के आयु, आरोग्य और बल का क्षय' होता है। घरों में रहने के बिना गुजारा नहीं हो सकता। मानवी सभ्यता घरों में रहना आवश्यक समझती है, इसलिए वेद ने कहा है–"हे मनुष्य! घर ही आयु, आरोग्य

और बल का क्षय होने का हेतु है, इसलिए घर के लिए खिड़कियाँ, बरामदे आदि ऐसे बनाओ कि जिससे मुक्त मार्ग से वायु का प्रवेश अन्दर हो जावे और तुम्हारी आयु, नीरोगिता और शक्ति बढ़ सके।" यदि तंग गलियों के तंग मकानों के बन्द कमरों में मनुष्यों को रहने का अभ्यास हो जाएगा, तो वायु और आरोग्य का कितना क्षय हो सकता है, इस बात की कल्पना पाठक ही कर सकते हैं।

(२) **शं-भु**–(शं-Welfare, happiness, prosperity, health, peace) 'श' का अर्थ–खुशी, कुशलता, आनन्द, सुख, खैरियत, आरोग्य, नीरोगिता, प्रताप, सौभाग्य, पुष्टि, वृद्धि, आराम, सेहत, तन्दुरुस्ती, चंगापन, शान्ति। 'भु' का अर्थ 'बनानेवाला'। अर्थात् 'शं-भु का अर्थ 'आरोग्य देनेवाला, रोग दूर करनेवाला, तन्दुरुस्ती करनेवाला, आराम देनेवाला' वायु है। वायु के सेवन से उक्त गुण शरीर में बसते हैं और जो लोक अपने मकानों से हवा के लिए प्रतिबन्ध खड़े करते हैं; उनको शारीरिक आरोग्यता प्राप्त नहीं हो सकती। उनके घरों में नाना प्रकार की व्याधियाँ और बीमारियाँ होती हैं और इस कारण उनको बड़ा कष्ठ भोगना पड़ता है। इस शब्द द्वारा वेद ने बताया है कि मानवी आरोग्यता हवा के ऊपर ही अवलम्बित है। इसलिए सदा शुद्ध वायु का सेवन करना उचित है।

(३) **हृदे मयो-भुवः**–(Filling our hearts with health and joy) 'मय' का अर्थ Pleasure, delight, satisfaction; आनन्द, समाधानवृत्ति, सन्तोष, हृदय की प्रसन्नता। वायु हृदय की प्रसन्नता करता है। आरोग्य वही है कि जिस समय हवा से हृदय को आनन्द होता है। जिस समय हवा से कष्ट होने लगते हैं, उस समय समझना चाहिए कि रोग का निवास शरीर में हो गया है। आरोग्य की अवस्था में हवा से अप्रसन्नता नहीं होती।

तात्पर्य कि वायु से जैसा शरीर का स्वास्थ्य होता है, वैसा ही हृदय और मन का सन्तोष बढ़ता है। अब यहाँ कई पूछेंगे कि यदि ऐसा है तो किसी-किसी समय हवा चलने से आनन्द क्यों नहीं होता। इसका उत्तर अत्यन्त स्पष्ट है कि अनेक प्रकार के सख्त और तंग कपड़े धारण करने के अभ्यास से तथा बन्द कमरों में सदा रहने के कारण आजकल के मनुष्यों के शरीर बीमारी से भरे रहते हैं। इसलिए शुद्ध वायु का सेवन करने का अभ्यास बढ़ाना आवश्यक है। जिससे उत्तम

स्वास्थ्य प्राप्त होगा और वायुसेवन के महत्व का भी पता लग जाएगा।

(४) **नः आयूंषि प्र तारिषत्**–(May he prolong our days of life) वायु हम सबकी आयु दीर्घ बनावे, अर्थात् प्राणियों के आयुष्य दीर्घ बनाना वायु का कार्य है। इसलिए मनुष्यों को शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिए। वायु तो सबकी आयु दीर्घ करने के लिए बैठा ही है, अथवा बिना पूछे लोगों के पास चला आता है, परन्तु लोग ही ऐसे हैं कि दीवारों के किले बनाकर बीमारियों के कष्ट भोगने के लिए खुशी से तैयार होते हैं। परमात्मा कितना कृपालु है कि जिसने वायु का इतना अमर्याद समुद्र बना रखा है कि जिसका सेवन करने से हम दीर्घायु, नीरोग और बलिष्ठ बिना व्यय करने के हो सकते हैं, परन्तु मनुष्य ऐसे हैं कि सदा बन्द और तंग मकानों में अपने-आपको बन्द करेंगे, बीमार होंगे और विषरूप दवाइयाँ मोल लेकर खावेंगे, परन्तु वेद की आज्ञा के अनुसार वायु सेवन नहीं करेंगे!!! क्या यह बड़ी हैरानी नहीं है? यदि मनुष्यों को दीर्घ आयुष्य चाहिए, तो खुली हवा में रहना चाहिए। जितना समय आप खुली हवा में और सूर्यप्रकाश में व्यतीत करेंगे उतना आरोग्य आपके पास आ सकता है।

(५) **हे वात! नः उत पिता असि**–(O Vata! Thou art our protector)–वायु हम सबका रक्षक है। लोग समझते हैं कि हवा लग जाने से बीमारी आती है, इसलिए कपड़े लपेट-लपेटकर शरीर का बन्द कर देते हैं तथा मकान के दरवाजे, खिड़कियाँ, झरोखे आदि सब बन्द रखते हैं!!! यह कितना आश्चर्य है? वैदिक धर्म के विरुद्ध आचरण इससे अधिक और क्या हो सकता है। अपने पिता से भागकर दूर रहने वाले कुपुत्र की सब लोग निन्दा करते हैं, परन्तु वायुरूपी हम सबके पिता से जब हम भागते हैं तो हम सब कुपुत्र नहीं होते? वायु हम सब का पिता है, उसको हमारे मकानों में 'प्रतिबन्ध' होता है। क्या यही हमारी पितृभक्ति है? पिता के पास पुत्र को जाना चाहिए और पिता पास आने लगेगा तो उसका सन्मान पुत्र को करना चाहिए। क्या ऐसा व्यवहार वायु और मनुष्यों का है? और प्रिय पाठकों! विचार कीजिए और अपने अस्वस्थ्य का कारण जान लीजिए। वेद का धर्म बता रहा है कि हम सबका पिता, रक्षक और पोषक वायु है। इसलिए अपने घरों में उसका स्वागत कीजिए।

(६) **उत भ्राता उत नः सखा**–(Indeed, thou art a brother

and a friend)–वायु हम सबका भाई और मित्र है। 'भ्राता' का दूसरा अर्थ 'पुष्टि करने वाला' ऐसा होता है, वायु के सेवन से पुष्टि भी होती है। 'सखा' शब्द सब प्रकार का हित करनेवाला वायु है', यह भाव बता रहा है। शुद्ध वायु के सेवन से कभी अहित नहीं होगा, यह निश्चय रखिए। अपने–आपको सदा बन्द रखने के बुरे अभ्यास से सब कुछ अनर्थ हो रहे हैं। इस वास्तविक बात को न जानते हुए मनुष्य वायु से ही डरते रहते हैं। इसलिए शनैःशनैः खुली हवा में रहने का अभ्यास बढ़ाना सबको उचित है। क्योंकि मनुष्यों का आरोग्य इसी के साथ रहने से बढ़ सकता है।

(७) **सः न जीवातवे कृधि**–(So give us strength that we may live long)–यह वायु हम सबको ऐसी शक्ति देवे कि जिससे हम सब दीर्घ आयु का उपभोग ले सकेंगे। इसका तात्पर्य स्पष्ट है। वायु के ही सेवन से मनुष्यों के शरीरों में एक प्रकार की अद्‌भुत जीवन शक्ति बढ़ती है, जिससे मनुष्यों का दीर्घ जीवन हो सकता है। इसलिए जो–जो मनुष्य अपना दीर्घ जीवन करना चाहते हैं, वे सब अपना समय जहाँ तक हो सके वहाँ तक घर के बाहर खुली हवा में व्यतीत करें, क्योंकि घर ही 'क्षय' का हेतु है और शुद्ध वायु दीर्घ आयुष्य देनेवाला है।

(८) **हे वात! यत् अदः ते गृहे अमृतस्य निधिः हितः। ततः नः जीवसे देहि**–(O Vata! The store of immortality is there is thy home, give us thereof that we may live long)–हे वायो! तेरे घर में ही अमरपन का खजाना रखा हुआ है, उसमें से थोड़ा–सा हम सबको देओ जिससे हम दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें। इसका तात्पर्य स्पष्ट है–वायु में ऐसा शोभन गुण है कि जिसके प्राप्त करने से निःसन्देह दीर्घ आयुष्य होता है। इसी का भाव पूर्व मन्त्रों में 'भेषज, शंभु, मयोभुवः' आदि शब्दों द्वारा व्यक्त किया है।

वायु का इतना महत्व है। वेद की भाषा भी अत्यन्त स्पष्ट है, किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। फिर क्या कारण कि लोग विरुद्ध मार्ग से जा रहे हैं! हे लोगों! अमृत का समुद्र आपके पास परमेश्वर ने दिया है। कोई मूल्य देना नहीं पड़ता, फिर आप इस अमृत का सेवन न करते हुए क्यों मोल से विषों को खरीदते हैं? क्या आवश्यकता है? इन मन्त्रों को स्मरण कीजिए और अपना आयुष्य बढाइए।

आयुष्य बढ़ाना वेद को अभीष्ट है। आप सब ऐसे उपाय कर रहे हैं, कि जिससे आयु, आरोग्य ओर बल क्षीण हो रहा है। आपका विष रूप औषधियों पर जितना विश्वास है, उससे दसवाँ हिस्सा भी यदि 'इस अमृत के समुद्र पर विश्वास' बैठ जाएगा तो आपको निःसन्देह कल्याण होगा। स्मरण रखिए कि शुद्ध वायु केवल 'अमृतरूप' है। इसके योग्य सेवन से आपको दीर्घ आयुष्य, उत्तम स्वास्थ्य और बल प्राप्त हो सकता है। वेद का कार्य वेद ने किया है अब देखना है कि केसा आचरण करते हैं।

दीर्घ आयुष्य

वैदिक धर्म का मुख्य लक्ष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त करने की ओर विशेष है। मनुष्यों की सर्वसाधारण आयु सौ वर्ष की है। इससे कम आयु में मरना अधम जीवन का परिणाम है। समाज के दोष, नगर के दोष, पिता-माता के दोष तथा अपने दोष बढ़ने के कारण आयु घटती है तथा समाज की शुद्धि, नगर की पवित्रता, पिता-माता का धर्माचरण और अपना धार्मिक जीवन आयुष्य की वृद्धि करता है। वैदिक धर्म के अनुसार केवल सौ वर्ष की साधारण आयु प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है, परन्तु-

भूयश्च शरदः शतात्॥ -यजु० अ० ३६।२४

सौ वर्षों से भी (भूयः) अधिक आयु प्राप्त करना आवश्यक है। प्रतिदिन सन्ध्या में इस मन्त्र का पाठ करना इसलिए आवश्यक समझा गया है, कि लोग आयु के प्रश्न की ओर अपना विशेष ध्यान सदा देते रहें। विशेष ध्यानपूर्वक सदाचार के करने से तथा अनियमों में न फँसने से मनुष्य दुगनी अथवा तिगुनी आयु भी प्राप्त कर सकता है। योग साधना की विशेषता इसीलिए है। योग के आठ अंग हैं। यम और नियमों का पालन करने से व्यक्ति और समाज की पवित्रता बढ़ती है। आसनों से शरीर के नस नाड़ियों के अन्दर से रोग उत्पन्न करनेवाले सब प्रकार के मल दूर होते हैं और शरीर शुद्ध होने के कारण नीरोगिता प्राप्त होती है। प्राणायाम से प्राणरूपी जीवनशक्ति में विशेष बल प्राप्त होता है, फेफड़े बलवान होने के कारण श्वास और उच्छ्वास की क्रिया ठीक प्रकार होती है, अर्थात् यम, नियम, आसन और प्राणायाम का दीर्घ जीवन के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि किसी को दीर्घ आयुष्य प्राप्त करने की अभिलाषा हो तो, उसको चाहिए कि वह उक्त चारों अंगों का यथाविधि अभ्यास करे।

इन चार अंगों के अभ्यास का फल तत्काल प्राप्त होता है। दो-चार मास के अन्दर ही इसका अनुभव पाठक ले सकते हैं। आसन और प्राणायाम के अभ्यास से पन्द्रह वर्ष की कब्जी, मलावरोध, अपचन, अरुचि आदि रोग पूर्णता से हटे हैं। जो गुण दवाओं से नहीं प्राप्त हो

सकते, उस आरोग्य की प्राप्ति आसन और प्राणायाम से होती है। रुपयों का व्यय करने की आवश्यकता नहीं, डाक्टरों और वैद्यों के पास टेढ़ा मुँह करके जाने की आवश्यकता नहीं, आसन और प्राणायाम के बिना मूल्य आरोग्य की प्राप्ति नहीं होती है, परन्तु आश्चर्य यह है कि इस योगाभ्यास की ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने शरीर की सब नस नाड़ियों का उत्तम अभ्यास करके शारीरिक आरोग्यता प्राप्त करने की विधियाँ निश्चित की हैं और इन सबका योग के पूर्वोक्त चारों अंगों में अन्तर्भाव किया; यह उन ऋषियों की बुद्धिमत्ता है, परन्तु उनकी आर्य सन्तानों में इस प्रकार शिथिलता है कि अनुभवसिद्ध नियमों का पालन भी उनसे नहीं हो सकता।

आयुः पृथिव्यां द्रविणम्॥—(आन्ध्र) तैत्तिरीय आरण्यक १०।३६

'इस पृथिवी पर सच्चा धन केवल आयु ही है।' यह ऋषियों का सिद्धान्त सर्वकाल में अटूट रहेगा। आयु रहने पर अन्य धनों का उपयोग और उपभोग किया जा सकता है, परन्तु यदि आयु ही न रहेगी, तो सब सांसारिक सुखोपभोग के साधन प्राप्त होने की सम्भावना होने पर भी उनका कोई कार्य नहीं हो सकता। इसलिए सब धनों से आयु ही श्रेष्ठ धन है। इस आयु का उपयोग आयु की वृद्धि करने के लिए करना चाहिए। इस विषय में वेद का उपदेश निम्न प्रकार है—

आयुः पवत आयवे॥ —ऋग्वेद ६।३७।८

"दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए अपनी आयु को पवित्र बनाओ।" पवित्रता ही एक विशेष गुण है कि जिससे नीरोगता और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। कपड़ा मलीन होने से जल्दी फट जाता है और स्वच्छ रखने से बहुत दिनों तक चलता है। जहाँ मल बढ़ेंगे वहाँ विनाश का साम्राज्य अवश्य होगा इसमें कोई सन्देह नहीं। यम-नियमों में "शौच" अर्थात् शुद्धता तथा पवित्रता का उल्लेख इसी बात की सिद्धि कर रहा है। परमात्मा पूर्णतया निर्मल होने के कारण अविनाशी है जो निर्मल होते हैं वे अविनाशी होते हैं, अर्थात् जहाँ मल होंगे वहाँ नाश अवश्य होगा।

इसलिए दीर्घायु प्राप्त करनेवालों को उचित है कि वे पवित्रता प्राप्त करें। शरीर के अंगों के विषय में पाठक देख सकते हैं कि जो दन्तधावन (दातुन) नहीं करते उनके दाँत मलीन रहते हैं और वे शीघ्र ही गिर जाते हैं। शरीर के ऊपर मल का संचय अधिक होने के कारण

फोड़े-फुन्सियाँ आदि बीमारी होती है। मल के कारण रक्त की अशुद्धि होने से अनेक व्याधियाँ होती हैं। उपस्थ इन्द्रियों के चारों ओर मल का संचय होने से वीर्य क्षीण होता है और वीर्यक्षीण होने से मनुष्य अल्पायु होता है। पेट में मल का भार होने से विविध प्रकार के कृमिविकार होते हैं। फेफड़ों में मल बढ़ जाने के कारण श्वास, दमा, क्षय आदि भयानक व्याधियाँ होती हैं। इस प्रकार हर एक शरीर के अवयव में मल का संचय होने से बीमारी होती है तथा शुद्धता और पवित्रता होने से उक्त सब बीमारियाँ दूर होती हैं। यह एक शौच अर्थात् पवित्रता का महात्म्य है।

सन्तोष अर्थात् मन की प्रसन्नता का ही विलक्षण गुण है। मन का सन्तोष आयुष्य बढ़ाता है। चेहरे पर सदा स्मित रखना चाहिए। हास्य के कारण आयु बढ़ती है जो मनुष्य हास्यमुख होते हैं वे दीर्घजीवी होते हैं। हास्यमुख रखने से आयुष्य बढ़ता है इसलिए मनुष्यों को उचित है कि वे सदा प्रसन्नचित्त रहें। क्रोध के कारण आयु न्यून होता है क्रोध के झटके से रुधिर में भयानक स्थिति अन्तर होता है और रुधिर की जीवनशक्ति का नाश होता है। इसलिए धर्मशास्त्र ने क्रोध की गणना शत्रुगणों में की है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये छह शत्रु हैं जो मनुष्य की आयु छीनते हैं। इसलिए इन शत्रुओं को सदा दबाना चाहिए।

'तप' के कारण शीत उष्ण सहना करने की शक्ति शरीर में बढ़ती है जिससे बीमारियाँ कम होती हैं। स्वाध्याय से अपनी वास्तविक अवस्था का ज्ञान होता है। ईश्वरभक्ति से आत्मा की प्रसन्नता प्राप्त होती है। इसी प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि नियमों से शरीर का स्वास्थ्य निःसंशय बढ़ता है। शरीर के आरोग्य की दृष्टि से इन यम-नियमों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए जो मनुष्य नीरोगिता और दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं वे यम, नियम, आसन और प्राणायाम का अवश्य अभ्यास करें।

आत्म-विश्वास

जीवात्मा के स्वभाव में 'प्रेम' एक विशेष गुण है। जहाँ इसकी एकाग्रता होती है वहाँ इसके प्रेम का स्रोत बहने लगता है। यहाँ तक इसके अन्दर प्रेम है कि प्रेम के अतिशय में यह अपने-आपको भूल भी जाता है। यही भक्ति का अतिशय है। यदि इस प्रकार की दृढ़ भक्ति यह जीव परमात्मा के विषय में करेगा तो निःसन्देह इसकी उन्नति होने में शंका ही नहीं रहेगी, परन्तु साधारण मनुष्यों के व्यवहार में ऐसा हुआ करता है कि वे परमेश्वर की भक्ति निरर्थक समझकर छोड़ देते हैं और अन्य विषयों के भक्त बनते हैं। कई लोग स्त्रियों के भक्त बनकर व्यभिचार करते हैं, दूसरे मदिरादि दुष्ट व्यसनों के भक्त बनते हैं और अपनी खराबी कर लेते हैं। इसी प्रकार अन्य मनुष्य अन्य ग्राम्य इच्छा की भक्ति करते हैं और गिरते हैं।

यदि उच्च की भक्ति नहीं होगी तो नीच की होती ही रहेगी। जीवात्मा का स्वभाव ही भक्ति करने का है। यदि उच्च ईश्वर की भक्ति न होगी तो किसी दूसरे की अवश्य होगी ही। इसलिए अपने व्यवहारों के विषय में सावधानी रखना हर एक का कर्तव्य है।

परमेश्वर की भक्ति करने से आत्मा के अन्दर अनन्त शुभ गुणों का संवर्धन होने लगता है और स्वस्ति, शान्ति और निर्भयता प्राप्त होने से विलक्षण आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। इसलिए वेद ने कहा है कि—

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते॥ —यजु० २५।१३

'जो ईश्वर आत्मविश्वास और आत्मिक बल देता है इसलिए जिसकी सब सज्जन उपासना करते हैं।' आत्मविश्वास में एक प्रकार की बड़ी विलक्षण शक्ति है। अपनी शक्ति के विषय में विश्वास चाहिए, अन्यथा हाथ से कोई कार्य नहीं हो सकता। जिसका इस प्रकार अपने ऊपर विश्वास नहीं है, उसको आत्मघाती कहते हैं।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

—यजु० ४०।३

'आत्मघाती लोग अवनत होते हैं।' यह भाव उक्त मन्त्र का है। अपने आत्मिक बल पर जिनका विश्वास नहीं है उनकी कभी उन्नति हो ही नहीं सकती। 'परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है। सब स्थिर-चर में परमेश्वर बसता है। उसका स्पमरण करते हुए निष्काम और निःस्वार्थ भाव से कर्म करते हुए जगत् का उपभोग करना चाहिए। किसी के धन का अपहरण करना उचित नहीं', निर्लोभ वृत्ति से सर्व व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि सब धन परमेश्वर का ही है। हमारे पास जो धन है वह सब उसी एक अद्वितीय परमात्मा का ही है। सबके हित के लिए उसने हमारे पास रखा है। इस प्रकार भाव धारण करते हुए दूसरों की सहायता करने में अपनी शक्ति का व्यय करना चाहिए। 'इस प्राकर के शुद्ध कर्म और पुरुषार्थ का जीवन व्यतीत करना चाहिए, यही एक धर्म का मार्ग है। इससे भिन्न दूसरा कोई मार्ग नहीं है। पुरुषार्थ करने से कभी दोष नहीं हो सकता।' (यजु० ४०।१-२) यह वेद का उपदेश है। यही आत्मविश्वास का धर्म है। इस धर्म के ऊपर जिनकी श्रद्धा नहीं होती वे आत्मघाती पतित होते हैं। तात्पर्य आत्मविश्वास की अद्भुत शक्ति है और हर एक को उस शक्ति की प्राप्ति करनी चाहिए। परमेश्वर की भक्ति से ही वह शक्ति सुगमता से प्राप्त होती है।

जिस समय मनुष्य के मन में अपनी शक्ति के विषय में सन्देह उत्पन्न होता है, उसी समय उसकी सम्पूर्ण शक्ति नष्ट होने लगती है। विश्वास और श्रद्धा से शक्ति बढ़ती है और सन्देह से कमज़ोरी बढ़ने लगती है। यदि अपने ऊपर स्वयं अपना ही विश्वास न होगा, तो दूसरा कोई भी उसकी सहायता नहीं कर सकता। इस प्रकार एक का सन्देह दूसरों की शक्तियों को भी अशक्त बनाता है। 'आत्मविश्वासी मनुष्य सदा विजयी होते हैं।' आपत्ति प्राप्त होने से धैर्य दुगुणा होता है, दुःख में से सुख का मार्ग उनको प्राप्त होता है, क्लेशों से आनन्द का धाम वे प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ दूसरे हताश हो जाते हैं वहाँ उत्साह का तेज उनके मुखमण्डल पर चमकने लगता है। जो विपत्ति दूसरों को प्रतिबन्धक होती है वही विपत्ति आत्मविश्वासी मनुष्यों को आगे बढ़ने के लिए कारणीभूत होती है।

क्या आपत्तियाँ, विपत्तियाँ, क्लेश और दुःख मनुष्य को गिरानेवाले हैं? कदापि नहीं। ये एक प्रकार की अवस्थाएँ हैं। ज्ञाता मनुष्य इनसे ही अपना बल बढ़ाता है, परन्तु अविचारी मनुष्य इनको देखकर भयभीत

होता है। इनको देखकर डरना नहीं चाहिए। भय को दूर करने से सब विपत्तियों में आनन्द प्राप्त होगा, कारागृह में मन स्वतन्त्र विचार कर सकेगा, प्रतिबन्धों में स्वातन्त्र्य का बीज दिखाई देगा।

क्या कोई मनुष्य जानता नहीं कि आज का सूर्य होने से ही कल के सूर्योदय का अद्‌भुत आनन्द प्राप्त हो सकता है, अन्धकार कष्टमय रात्रि ही दिव्य प्रकाशमय दिन की जननी है। मनुष्यों अथवा प्राणियों का मृत्यु ही बालकों के जन्म का आनन्द देने का मुख्य हेतु है। जन्म का आनन्द यदि चाहिए तो मृत्यु के कष्ट को अवश्य भोगना चाहिए। सामाजिक स्वातन्त्र्य प्रतिबन्धाों में ही समाज-सुधारक जन्म लेकर पुरुषार्थ से सामाजिक स्वातन्त्र्य लोगों को अर्पण करके अपना नाम कीर्त्ति से अजर अमर कर देते हैं। धार्मिक अन्धकार की अवस्था में ही महान् धर्मसंस्थापक आचार्य जन्म लेकर ज्ञानसूर्य के प्रकाश में सब लोगों को लाकर अपना जगद् गुरुत्व सिद्ध कर देते हैं। राष्ट्रीय परतन्त्रता में ही वीर पुरुष जन्म लेते हैं और अपने सर्वस्व की आहुति राष्ट्रीय महायज्ञ में अर्पण करके अपने राष्ट्र को स्वातन्त्र्य का दान करके यशस्वी होकर पूजनीय बनते हैं। तात्पर्य हुआ कि आपत्ति की अग्नि में जो नहीं तपता वह वन्दनीय कभी नहीं हो सकता। इन महान् दिव्य विभूतियों को यदि विपत्तियों से रुकावट नहीं हुई, तो अन्यों को भी क्यों होगी। विपत्तियों से स्वयं रुकावट नहीं होती यदि आप उनसे डरकर पीछे नहीं भागेंगे। आप अपने स्थान पर निश्चय से आत्मविश्वास के साथ खड़े रहिए। जब आप आपत्तियों का मुकाबला करेंगे तब कोई विपत्ति आपके सन्मुख खड़ी नहीं रहेगी।

तात्पर्य आप स्वयं अपनी अधोगति के कारण हैं यदि आपको आपत्ति, विपत्ति, दुर्दशा, कष्टस्थिति, पराधीनता, दीनता, अधोगति आदि सता रहे हैं तो उनके अस्तित्व का कारण आपके अन्दर विद्यमान है। यदि आपकी आत्मा में आत्मविश्वास होगा तो कोई विपत्ति आपके सन्मुख नहीं ठहर सकेगी, यह वैदिक धर्म का सिद्वान्त है।

आप विचार कीजिए कि आत्मशक्ति की वृद्धि करने में आपका कितना समय जा रहा है और व्यर्थ ईर्ष्या, द्वेष, भय, चिन्ता, लोभ, मत्सर, क्रोध कुविचार और दुराचार आदि में आपका कितना समय जा रहा है। आप किसी-किसी समय चाहते हैं, कि दूसरे का द्वेष करके उसको नीचे गिराने से आप उन्नत समझे जाएँगे, परन्तु यह आपका भ्रम

है। ऐसा करने से उस दूसरे का नुकसान होगा या नहीं यह दूसरी बात है, परन्तु उतना समय आपका व्यर्थ जाने से आपका सबसे प्रथम नुकसान हो रहा है इसका विचार कीजिए। ऐसे फन्दों में आपकी जो आयु जाती है उससे आपका कैसे लाभ हो सकता है? आपकी आयु आपकी उन्नति के पुरुषार्थों में ही पूर्णतया लगनी चाहिए। तभी आत्मा का विकास हो सकता है और आत्मविश्वास बढ़ सकता है?

अब इस दृष्टि से विचार कीजिए कि आप स्वयं अपने लिए आपत्तियाँ बढ़ा रहे हैं या कम कर रहे हैं। आप अपने मन के सुसंस्कारों से आपत्तियों की सम्पत्ति बना सकते हैं, दु:खों का सुखों में परिणत कर सकते हैं, क्लेशों का रूपान्तर प्रसन्ता में कर सकते हैं, परधीनता के उदर में स्वातन्त्र्य का जन्म हो सकता है। इसके लिए एकमात्र आपका निश्चय चाहिए और आत्मा के अन्दर श्रद्धा भक्ति के साथ आत्मविश्वास चाहिए।

आप जो भक्ति दुर्व्यसनों में लगा रहे हैं वही अच्छे पुरुषार्थ में लगाइए, जो श्रद्धाहीन मार्ग पर रखी है वही अच्छे सीधे मार्ग पर रखिए, जो बल निन्दा में व्यतीत हो रहा है वही गुण ग्रहण करने में समर्पित कीजिए, तात्पर्य कि आप थोड़ी-सी अपनी दृष्टि दिशा बदल दीजिए, फिर आपको पता लग जाएगा, कि वही शक्ति, जो पहले बाधक हो रही थी, वही किस प्रकार साधक है और आपकी योग्यता कितनी ऊँची हो सकती है।

आपका विश्वास नहीं है तो न सही, चार-छह महीने इस प्रकार निश्चयपूर्वक करके देखिए। यदि आपकी हानि हुए, तो 'वैदिक-धर्म' जिम्मेवार है।

उन्नति का मार्ग

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिविर्विदथमा वदासि।।

—अथर्व० ८।१।६

हे मनुष्य! ऊपर चढ़ो, गिरो मत। दीर्घ जीवन के लिए ही दक्षता का बल तुझे देता हूँ। इस सुखमय अमृतपूर्ण रथ पर चढ़ो और पूर्ण दीर्घ आयुष्य के साथ जीवनयुद्ध में भाषण करो।

आत्म परीक्षण

आत्म परीक्षण का अर्थ है "अपनी परीक्षा स्वयं करना।" यदि इस विश्व में सबसे कठिन कोई बात है तो यही है। हर एक मनुष्य दूसरों की परीक्षा कर सकता है। जो भूल दूसरों की परीक्षा करने में नहीं होती, वही भूल अपनी परीक्षा करने के समय होती है, दूसरों के छोटे दोष भी बड़े प्रतीत होते हैं और अपने बड़े दोष भी छोटे प्रतीत होते हें। इस प्रकार विचार करने से हर एक विचारी मनुष्य को प्रतीत हो सकता है कि अपनी परीक्षा करने का कार्य कितना मुश्किल है। वैदिक धर्म में इसीलिए आत्म परीक्षा का महत्त्व बड़ा भारी माना है। आत्म परीक्षा के बिना धर्म का अनुष्ठान योग्य रीति से नहीं हो सकता। इसलिए तै० आ० ग्रन्थ में कहा है कि–

यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भयामुदरेण शिस्त्रा रात्रिस्तदवलंपतु यत्किंच दुरितं मयि।

तै०आ० १०।२५।१

"जो कुछ भी पाप रात्रि के समय मैंने मन, वाणी, हाथ, पाँव, उदर, शिस्त्र आदि अवयवों द्वारा किया हो, उसको रात्रि का सत्कृत्य मिटावे।" इसी प्रकार दिन में जो कुछ भी पाप किया हो उसका उच्चारण रात्रि के समय करके उस किये हुए पाप के विषय में पश्चात्ताप करना अवश्य करना चाहिए। रात्रि के पाप के विषय में प्रात:काल पश्चात्ताप करना और दिन में किये हुए पापों के विषय में रात्रि के समय पश्चात्ताप करना तथा एक बार हुए पाप पुन: पुन: न करने का निश्चय सवेरे और शाम को करना। इस प्रकार आत्म परीक्षण करते–करते निश्चय के बल से मनुष्य सुधरता हुआ, इतना शुद्ध होता है कि उसके मन में स्वल्प भी पाप संकल्प नहीं आते। यही अवस्था प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करना चाहिए। मनुष्य की अवस्थाएँ निम्न प्रकार होती है–

(१) अच्छे और बुरे कर्मों का विचार न होना।

(२) अच्छे और बुरे कर्मों का विचार करने की शक्ति रखने पर भी उसकी ओर ध्यान न देना।

(३) बुरे विचारों को रोकना और अच्छे विचारों को अमल में

लाना।

(४) बुरे विचारों की न्यूनता और अच्छे विचारों की प्रधानता प्राप्त करना।

(५) मन में बुरे विचारों की लहर उत्पन्न न होना।

मन का संयम इसलिए करना होता है कि उसमें विचार ही उत्पन्न न हो सकें। मन में कुत्सित भाव जिस समय तक रहेंगे तब तक बुरे विचार उत्पन्न न होना सर्वथा असम्भव है। इसलिए मन को शुद्ध विचारों के वायुमण्डल में सदा रखना चाहिए, इसलिए वेद ने कहा है–

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

–ऋग्वेद और यजुर्वेद

"कानों से अच्छा भाषण श्रवण करें। आँखों से अच्छा रूप देखें। सुदृढ़ अवयवों के साथ बलवान शरीर से युक्त होकर श्रेष्ठों की प्रशंसा करें और जब तक आयु होगी तब तक श्रेष्ठों का हित करें।"

यह वेद के मन्त्र की सूचना सब मनुष्यों को मन में धारण करनी चाहिए। इन्द्रियों द्वारा बुराईयों का प्रवेश मन में होता है और वहाँ बुरे संस्कार जम जाते हैं। मन में बुरे संस्कार जमा होने के कारण ही मनुष्य अवनत होता है। इसलिए अपनी इन्द्रियों को कभी बुराई की ओर भेजना नहीं चाहिए। यदि किसी कारण एक बार मन बुराई की ओर गया तो उसको वहाँ ही रोकना। यदि रोकने पर भी न रुक गया और उसके द्वारा बुरा कर्म हो गया, तो पश्चात्ताप द्वारा प्रबल निश्चय से फिर दुबारा उसको रोकने का प्रयत्न करना उचित है। इसी प्रकार बार-बार प्रयत्न होने पर मन पवित्र विचार करने लगता है और टेढ़ी चालों से पीछे हटता रहता है, परन्तु यदि मनुष्य ही उसके टेढ़े विचारों को पसन्द करने लगेगा तो फिर उसके सुधरने का कोई उपाय नहीं। दृढ़ विश्वास से प्रबल प्रयत्न किया जाए तभी उसको रोका जाता है। जिस प्रकार फटा हुआ कपड़ा समय पर न सीया जाए तो अधिक-अधिक फटता चला जाता है उसी प्रकार मन की अवस्था है। मन को कपड़ा समझिए और उसके दोषों को छेद समझ लीजिए। जितने दोष मन में होंगे उतने छिद्र मनरूपी कपड़े में हैं ऐसा आप समझ लीजिए। यदि एक छोटा-सा छिद्र बड़े कपड़े का नाश कर सकता है तो असंख्य छिद्र होने पर कपड़े की क्या अवस्थ हो सकती है? इसका विचार हर एक मनुष्य कर

सकता है। वेद मन्त्रों में भी यही विचार आया है।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।। —यजु० अ० ३६।२

"जो मेरी आँख, हृदय और मन आदि इन्द्रियों में फटा हुआ छिद्र होगा उसको ज्ञान का पालक ठीक करे और जो विश्व का स्वामी है वह हम सबके लिए शान्ति देवे।"

इस मन्त्र की विशेष व्याख्या "सच्ची शान्ति का सच्चा उपाय" नामक पुस्तक में पाठक देख सकते हैं। यहाँ मन के तथा इन्द्रियों के छिद्र का उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दोष और कुविचार ही मन के छेद हैं। इसलिए किसी को भी उचित नहीं कि वह अपनी इन्द्रियों द्वारा दोष करके इन्द्रियों को छिद्ररूप बनावे। स्वयं ही अपने कपड़ों को फाड़ने के समान ही उक्त आचरण है। ज्ञान के द्वारा मन को रोकने से दोष दूर हो जाते हैं। यह कार्य यद्यपि बहुत कठिन है तथापि जो मनुष्य धर्म के मार्ग से चलना चाहते हैं उनको इस बात की ओर मुख्यता ध्यान देना चाहिए। मन के विषय में शिथिलता कभी नहीं रखनी चाहिए। ढीले मन के कारण ही मनुष्य में अशक्तता होता है। संयम के कारण मन बलवान् होता है। इसलिए कहा है कि–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।। —मै० उ० ६।३४

"मनुष्यों की पराधीनता के लिए मन ही कारण है।" अर्थात् जिनका मन शुद्ध स्वतन्त्र और प्रबल होता है वे परतन्त्र नहीं बन सकते और जिनका मन अपवित्र, पराधीन और निर्बल होता है वे कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकते। इसलिए बन्धन और मोचन मन के ऊपर सर्वथा निर्भर है।

मन की और इन्द्रियों की शुद्धि यदि प्राप्त करनी है तो आत्म परीक्षण अवश्य करना चाहिए। प्रतिदिन सायं और प्रातः अपनी परीक्षा करना उचित है इस प्रकार जो अपनी परीक्षा करेंगे और मन के व्यापारों का निरीक्षण करेंगे उनकी उन्नति शीघ्र ही हो सकती है।

आज ही प्रारम्भ करो

न श्वः इत्युपासीत।
को हि मनुष्यस्य श्वो वेद।। —श०बा० २।१।३।९

"कल करूँगा, कल किया जाएगा, ऐसा न कहो। कौन भला मनुष्य कल की बात जानता है।"

सबसे बड़ा आश्चर्य

इस विश्व में स्थान-स्थान पर आश्चर्य हैं, परन्तु बड़ा आश्चर्य मनुष्य के व्यवहार में है। देखिए-

(१) मनुष्य बड़े नगर में रहना चाहता है। छोटे ग्राम में रहना नहीं चाहता। छोटे ग्राम में रहने से आबोहवा सुगमता से विपुल प्राप्त होने के कारण ग्रामीण मनुष्यों का स्वास्थ्य और आरोग्य अधिक अच्छा होता है। बड़े नगरों में नाना व्याधियाँ मुफ्त में मिलती है। रोग और अशक्तता भी ग्रामों की अपेक्षा नगर में अधिक होती है, परन्तु सबकी दृष्टि ग्रामों को छोड़कर नगरों के तंग मकानों में घुसने की ओर अधिक रहती है।

(२) मनुष्य बड़े अच्छे मकान में रहना चाहता है। जितना व्यय मकान पर किया जाता है उससे शतांश भी शरीर को दीर्घजीवी और बलवान करने के लिए नहीं किया जाता। मकान और उद्यान की शोभा के लिए जितना ख्याल रखा जाता है, उसका सौंवा हिस्सा भी शरीर की नीरोगिता के लिए नहीं दिया जाता।

(३) मनुष्य अपने कपड़े, नेकटाई, कॉलर, बूट, सूट आदि में फैशन करने के लिए जितना व्यय करता है और जितना ध्यान देता है वैसा अपने शरीर का विचार नहीं करता, परन्तु वह नहीं जानता कि शरीर के लिए ही ये भूषण हैं न कि भूषणों और फैशनों के लिए शरीर है। बाहर के पहिनावे के लिए सब ध्यान रखते हैं और अन्दर के शरीर के लिए कोई देखता तक नहीं।

(४) कई मनुष्य व्यायाम आदि करके अपना शरीर सुडौल करते हैं, परन्तु इन्द्रियों को स्वाधीन रखने का यत्न नहीं करते। इससे यह होता है कि इन्द्रियों के दुराचरण में शरीर का नाश होता है।

(५) कई लोग विद्याभ्यास आदि द्वारा तथा अन्य विविध प्रकारों के नियम आदि द्वारा इन्द्रियों को स्वाधीन करने का यत्न करते हैं, परन्तु अपने मन को स्वाधीन नहीं रखते, जिसके कारण मन के कुविचारों की आग में शरीर और इन्द्रियाँ भस्म हो जाती हैं।

(६) कई लोग सुविचार और ज्ञान सम्पादन द्वारा अपने मन को सुसंस्कृत करना चाहते हैं, परन्तु अपनी बुद्धि की प्रेरणा से ही सब

शरीर के आन्तरिक और बाह्य व्यापार चलते रहते हैं तथा बुद्धि की योग्यता से ही मनुष्य की योग्यता समझी जाती है।

(७) यदि कोई मनुष्य बुद्धि को विज्ञानसम्पन्न और शान्त करना चाहता होगा तो उसको आत्मा की शक्ति का विचार तक नहीं होता। वह बुद्धि की योगिक सिद्धियों और चमत्कारों में ही लीन हो जाता है।

तात्पर्य मनुष्य इतना बहिर्मुख हो रहा है कि उसको अपने अन्दर की अपेक्षा बाहर के पदार्थों का अधिक विचार है। यदि इस जगत् में सब से बड़ा कोई भ्रम है तो यही है। प्रत्येक मनुष्य को सोचना चाहिए कि वास्तव में मुझे किसकी अधिक आवश्यकता है। मनुष्य के अंन्दर निम्नलिखित शक्तियाँ हैं—

(१) **आत्मा**—सतत पुरुषार्थ करने का धर्म।

(२) **बुद्धि**—अविकारी शुद्ध ज्ञान धारण करने का धर्म। भक्ति, श्रद्धा, विश्वास आदि का स्थान।

(३) **मन**—चिन्तन, मनन, सारासार विचार करने का धर्म। तर्क-वितर्क कुतर्क का स्थान।

(४) **ज्ञानेन्द्रिय**—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-इन पाँच विषयों का ग्रहण करनेवाले कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक-ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय।

(५) **कर्मेन्द्रिय**—शौचद्वार, (उपस्थ) जननेन्द्रिय, हाथ, पाँव और वाक् ये पाँच कर्म करनेवाले इन्द्रिय।

(६) **शरीर**—जिसके अन्दर उक्त इन्द्रियादिक रहते हैं और इनके अतिरिक्त भी बहुत से उत्कृष्ट साधन जिसमें विद्यमान हैं।

(७) **विषय**—शरीर का उत्तम योगक्षेम चलने के साधन जो सम्पूर्ण जगत् में प्राप्त होते हैं।

सबसे अन्दर आत्मा है और क्रमशः बुद्धि आदि उसके बाहर हैं। अन्दर का बिगाड़ हो जाने से बाहर के स्वयं निकम्मे हो जाते हैं। इसलिए अन्दर के पदार्थों की ओर विशेष ध्यान से देखना चाहिए, परन्तु जगत् में सर्वसाधारण मनुष्य बाह्य पदार्थों का विशेष ख्याल करते हैं और अन्दर के मुख्य पदार्थों की ओर जाते तक नहीं। यदि जगत् में सबसे बड़ा कोई आश्चर्य है तो यही है। वास्तव में देखा जाए तो मनुष्य को उचित है कि वह आन्तरिक शक्तियों को विशेष प्रकार ठीक करे, परन्तु आन्तरिक शक्तियों का विचार करनेवाले मनुष्य बहुत ही थोड़े होते हैं।

उक्त साधारण पुरुषों के मार्ग से भिन्न कई मनुष्य हैं कि जो बाह्य शक्तियों की ओर उदासीन रहते हुए केवल आन्तरिक शक्तियों का ही ख्याल करते रहते हैं। केवल ब्राह्य शक्तियों का विचार करनेवाले भी गिर जाते हैं। दोनों शक्तियाँ–आन्तरिक और बाह्य–परस्पर सहाय्यकारी हैं। किसी एक का त्याग करने से हानि है। इसलिए वैदिक धर्म में दोनों का सम विकास करने की आज्ञा है।

वैदिक धर्म की दृष्टि से आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर, घर, समाज, नगर, राष्ट्र आदि सबका विकास योग्य रीति से करने की आवश्यकता है। किसी भी एक की ओर ध्यान देना योग्य नहीं हैं सभी अपने-अपने स्थान में मुख्य हैं और एक की उन्नति दूसरों की सहायता से होती है। वैदिक धर्म की लक्षण 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस्' है। इनकी स्थिति निम्न प्रकार है–

(१) **निःश्रेयस्**–आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, इनकी उन्नति, पूर्णता और इनकी शक्तियों का पूर्ण विकास।

(२) **अभ्युदय**–शरीर, कुटुम्ब, घर, जाति, समाज, नगर, राष्ट्र आदि की उन्नति, पूर्णता और इनकी निज शक्तियों का पूर्ण विकास।

अभ्युदय और निःश्रेयस मिलकर धर्म है। इससे स्वयं पता लग सकता है कि "वैदिक-धर्म" का कार्यक्षेत्र कितना सर्वाङ्गपूर्ण है। अन्य धर्मों में इस प्रकार समविकास का भाव नहीं है। किसी में एक बात की अधिकता है तो किसी में दूसरे बात की है। सब बातों का पूर्णतया समान विचार करनेवाला यही एक धर्म है कि जो परम पूज्य वेद द्वारा बताया है, देखिए–

वाङ्म आसन् नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु वाह्वोर्बलम्॥ १॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोजर्वः पादयोः।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः॥ २॥
तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे॥ ३॥
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ ४॥

–अथर्व० का० १९। सू० ६०, ६१, ६२।

(१) मे आसन् वाक्—मेरे मुख में उत्तम वक्तृत्व शक्ति रहे।

(२) **मे नसोः प्राणः**—मेरी नासिका में प्राण रहे।

(३) **मे अक्ष्णोः चक्षुः**—मेरे नेत्रों में देखने की शक्ति रहे।

(४) **मे कर्णयोः श्रोत्रं**—मेरे कानों में सुनने की शक्ति रहे।

(५) **मे अपलिताः केशाः**—मेरे बाल सफेद न हों।

(६) **मे दन्ताः अशोणाः**—मेरे दाँत निर्मल रहें।

(७) **मे बाह्वोः बहु बलं**—मेरे बाहुओं में बहुत बल रहें।

(८) **मे ऊर्वोः ओजः**—मेरे ऊरुओं में बड़ी शक्ति रहे।

(९) **मे जङ्घोः जवः**—मेरी जङ्घाओं में वेग रहे।

(१०) **मे पादयोः प्रतिष्ठा**—मेरे पाँवों में स्थिरता रहे।

(११) **मे सर्वा अरिष्टानि**—मेरे सब (आन्तरिक) अवयव उत्तम नीरोग रहें।

(१२) **मे आत्मा अनिभृष्टः**—मेरा आत्मा पतित न होवे।

(१३) **मे तन्वा तनूः**—मेरे शरीर के साथ शरीर की सब (बाह्य) इन्द्रियाँ रहें।

(१४) **मे सहे दतः**—मेरी श्रम सहन करने की शक्ति के साथ मेरे दाँत शरीर में रहें।

(१५) **सर्वं आयुः अशीय**—मुझे पूर्ण आयु प्राप्त होवे।

(१६) **स्योनं मे सीद**—मेरी (बुद्धि में) शान्ति रहे।

(१७) **मे पुरु पृणस्व**—मुझे पूर्णता प्राप्त होवे।

(१८) **स्वर्गे पवमानः**—मैं शुद्ध होकर स्वर्ग में पहुँच जाऊँ।

(१९) **मा देवेषु प्रियं कृणु**—मुझे ज्ञानियों में प्रिय करनेवाला बनाओ।

(२०) **मा राजसु प्रियं कृणु**—मुझे क्षत्रियों में प्रिय करो।

(२१) **मा अर्ये प्रियं कृणु**—मुझे वैश्यों में प्रिय करो।

(२२) **मा शूद्रे प्रियं कृणु**—मुझे शूद्रों में प्रिय करो।

(२३) **उत सर्वस्य पश्यतः प्रियं**—निश्चय से सब देखनेवालों में मुझे प्रिय करो अर्थात् मैं सबका हित करनेवाला बन जाऊँ जिससे सब समझदार लोग मुझ पर प्रीति करें।

इस प्रकार वैदिक धर्म का उपदेश है। अपनी शारीरिक शक्तियों

के विकास के साथ राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को भी वेद ने उत्तम प्रकार से बनाया है। आश्चर्य यह है कि छोटी-से-छोटी बात को भी वेद ने नहीं छोड़ा। दाँतों पर पीला रंग जो मलीनता के कारण होता है वह जिसके कारण दाँत जल्दी गिर जाते हैं, उनकी ओर ख्याल करने के लिए जैसा उपदेश किया है वैसा ही 'लोकमान्य' नेता बनने के लिए ही कहा है।

सुदृढ शरीर रखने का जो इन मन्त्रों में उपदेश दिया है उस विषय में पाठकों को ख्याल रहना चाहिए कि दवाई आदि का सेवन नहीं लिखा है। इसका हेतु यही है कि अपनी इच्छाशक्ति को चित की एकाग्रता से ऐसा प्रबल करना चाहिए कि इसी इच्छा शक्ति से नीरोगिता और बल प्राप्त हो सके।

पाठकों को यहाँ स्मरण रहे कि निर्बल मन के कारण व्याधियों का उपद्रव होता है और सबल मन के कारण उत्साहपूर्ण आरोग्य प्राप्त हो सकता है। परमेश्वर पर दृढ़ विश्वास और मन का सबल निश्चय-इन दो साधनों से न केवल अपने आरोग्य की प्राप्ति होती है, परन्तु केवल इन्हीं दो साधनों के द्वारा दूसरों को भी आरोग्य दिया जा सकता है। योगसाधना का यही फल है।

जितना औषध आदि बाह्य साधनों पर विश्वास अधिक बढ़ेगा उतना ही आरोग्यता कम होगी। इसलिए मनुष्य को और भी अवश्य ध्यान देना चाहिए।

मनुष्य आन्तरिक शक्तियों को छोड़ ब्राह्य जगत् में ही केवल भ्रमते रहते हैं यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

अदीनाः स्याम शरदः शतम्

"दीन न बनते हुए सौ वर्ष रहें।" यह वैदिक धर्म का ओजस्वी उपदेश है, वैदिक धर्मियों को यह वचन सदा अपने सामने रखना चाहिए। दीन और दुर्बल, हीन और कमजोर, निस्तेज और निर्वीर्य, इस प्रकार जो हीन जीवन है वह अधार्मिक है। जहाँ धर्म है, वहाँ अवश्य "अदीनता" रहेगी ही।

क्या आपको पता नहीं है कि जैसे मनुष्य के विचार होते हैं, वैसा ही मनुष्य बन जाता है? जैसे शब्द आप बोलते हैं वैसे ही आपके भाव बनते जाते हैं? जो दृश्य आप देखते हैं वैसे ही संसकार आपके मन पर स्थिर होते जाते हैं, जो आप सुनते हैं उससे आपकी बुद्धि का विकास अथवा संकोच हो रहा है, जिसको आप स्पर्श कर रहे हैं वह आपको विशेष अनुभव प्रतिक्षण दे रहा है, जो आप खाते और पीते हैं उससे आपका मन उच्च अथवा नीच बनता जाता है, उसी प्रकार आप जिसकी ख़ुशबू अथवा बदबू ले रहे हैं वे पदार्थ भी आप पर अपना असर जमा रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जगत् में जिस पदार्थ के साथ आपका सम्बन्ध आ रहा है, वह पदार्थ अपना उच्च अथवा नीच भाव आप पर स्थापित कर रहा है, क्या इसका आपने कभी विचार किया है? यदि आपने इसका विचार किया होगा, तो आप निःसन्देह अपने-आपको विशिष्ट परिस्थिति में ढालने का यत्न कर रहे होंगे।

आपको अपने शब्द सोचकर बोलने चाहिए और दूसरे के अच्छे ही शब्द सुनने चाहिए। इसी प्रकार अन्य स्पर्श, रस, रूप, गन्ध आदि विषयों के सम्बन्ध में भी समझिए। आप अपने शरीर को एक प्रकार का जहाज समझिए और इस संसार को समुद्र समझिए।

इस उपमा से आपको पता लग जाएगा कि आपको कितना संभालकर अपना मार्ग क्रमण करना चाहिए। तुफान की वायु बड़ी जोर से चल रही है, इसमें यदि आप सावधान न होते हुए अपने जहाज को हवा के साथ ही छोड़ देंगे तो उसकी क्या दशा होगी, आप ही सोचिए। यदि आप सोच-विचार करके अपने विषयों का ग्रहण नहीं करेंगे, तो किस रीति से "**अदीनता**" प्राप्त कर सकेंगे? अदीनता प्राप्त करने के लिए आपको विशेष प्रकार का ही जीवन व्यतीत करना चाहिए।

वेद कहता है कि "हम कानों से अच्छी बातें सुनें, आँखों से अच्छे पदार्थ ही देखें और सुदृढ़ शरीर बनाकर आयु की समाप्ति तक देवताओं का सत्कार करें–ऋ० १।८९।८" तथा "हमारा मन शुभ संकल्प करनेवाला बने–यजु० ३४।१" क्या ये मन्त्र आपको एक विशेष मार्ग की तरफ नहीं ले जा रहे हैं? जो मार्ग इन मन्त्रों द्वारा बारम्बार सूचित किया जा रहा है वही मार्ग आपको अनुसरण करना चाहिए।

यदि आप जानेंगे कि "अपने विचारों के अनुसार अपने जीवन में परिवर्तन होता है" तो आप निःसन्देह, बिना सोचे और समझे अपने मन में जैसा चाहे वैसा विचार आने नहीं देंगे। आपको कईयों का उपदेश सुनकर यह ख्याल हुआ है कि मैं दीन और दुर्बल हूँ, कई भजन दीन-हीन विचारों से भरे हुए सत्संगों में गाये जाते हैं, तात्पर्य अपनी हीनता और दुर्बलता ही आप दिन-रात ध्यान कर रहे हैं; यही कारण है कि आपके अन्दर विलक्षण शक्ति रहने पर भी आप हीन और दीन बन रहे हैं? क्या यह आश्चर्य नहीं है कि आप अपने ही हीन विचारों के कारण अपने ऊपर हीनता ले रहे हैं? यदि आप सोचेंगे तो आपको पता लग जाएगा कि आपकी शक्तियाँ कितनी अद्‌भुत हैं। इस विषय में वेद का उपदेश अत्यन्त स्पष्ट है।

वेद बता रहा है कि आप परमेश्वर के अमृतपुत्र हैं, उसी अद्वितीय जगदीश के आप भाई, मित्र और प्रिय शिष्य हैं। उस जगदीश में और आप में कोई स्थान और काल का अन्तर नहीं है। आप ही सोचिए तो सही कि उस अद्वितीय राजधिराज के पास नित्य रहनेवाले आप हैं उसके साथी और मित्र आप ही हैं, फिर उसके राज्य में आपको डरानेवाली कौन-सी शक्ति हो सकती है? कौन आपको डरा सकता है और कौन आपको गिरा सकता है? मामूली राजा के पास तो जगत् के अधिराजा के पास सदा ही रहते हैं फिर आपकी योग्यता केसे हीन हो सकती है? क्या आग में कोई पदार्थ रहता हुआ, सर्दी से दुःखी हो सकता है? क्या कभी शीतल सरोवर में तैरता हुआ मनुष्य प्यास से मर सकता है? वेद जीवात्मा की योग्यता हीन और दीन नहीं मानता। जो अपने-आपको हीन-दीन समझते हैं वे वेद का तत्त्व नहीं जानते। वेद में परमात्मा के और जीवात्मा के नाम प्रायः एक ही है।। "परमेष्ठी" शब्द का प्रयोग केव परमात्मवाचक है, इसके सिवाय बाकी के सब ही नाम बहुत करके दोनों के लिए समान ही हैं। देखिए–

(१) **आत्मा**—यह आत्मा शब्द जीवात्मा और परमात्मा के लिए प्रयुक्त होता है। "अत्-सातत्यगमने" इस धातु से यह शब्द बनने के कारण "सतत् पुरुषार्थ, सतत् प्रयत्न" करने का धर्म इनमें समान है, यह बात स्पष्ट हो रही है। यदि परमात्मा का कर्म सब विश्व में व्यापक हुआ तो आपका कर्म अपने शरीर में व्यापक होगा। स्थान की मर्यादा आप क्षणमात्र मान लीजिए, परन्तु उससे गुण के स्वरूप में तो कोई भेद नहीं हो सकता।

(२) **इन्द्र**—यह शब्द भी जीवात्मा और परमात्मा के लिए वेद में आता है। परमात्मा विश्व में इन्द्र है और उसकी शक्ति सूर्य चन्द्रादिकों में प्रकट हो रही है। इन्द्र शब्द का अर्थ "परम ऐश्वर्यवान्" है। आप इन्द्र हैं और इसलिए अपने आपको "परम ऐश्वर्यवान्" समझिए। यहाँ समझने का तात्पर्य युक्ति के प्रमाण से नहीं। युक्तियाँ नास्तिकों का मुख बन्द करने के लिए होती हैं। आस्तिकों के लिए युक्तिहीन विश्वास, जो अनुभव से उत्पन्न होता है, चाहिए। आप इन्द्र हैं, वेद कह रहा है कि आप इन्द्र हैं, आप देवों के राजा हैं, आपके शरीर में देवों के अंश हैं; सूर्य देवता का अंश आपके आँख में है, अश्विनी कुमार आपके नाक में हैं; मृत्यु आपके शिस्त्र में है, इसी प्रकार अन्य सब देवता आपके शरीर में, इन सब देवताओं का अधिष्ठाता इन्द्र, आपके शरीर में, आपके सिवाय और कोई भी नहीं है। इस बात को जान लीजिए और अनुभव कीजिए। आप इन्द्र है और आपकी शक्तियाँ सब अन्य ३३ देवाताओं में जाकर उनको जीवन दे रही हैं। क्या आपका विश्वास इस पर नहीं है? क्या आपको इस पर विश्वास रखना ठीक प्रतीत नहीं होता? यदि इतना वेदपाठ करने पर भी आपके मन में सन्देह है तो आप निम्न प्रकार विचार कीजिए। आप जिस समय चाहे बैठ सकते हैं और जिस समय चाहते हैं, उठते हैं; बहुत-से आपके अवयव आपकी इच्छा से कार्य कर रहे हैं, क्या इससे आपको अनुभव नहीं होता कि आप इस शरीर के प्रेरक चलाने वाले हैं? यदि आपको अनुभव नहीं है, तो आप एक-दो दिन आपकी इच्छा और अपने कर्म इनका परस्पर सम्बन्ध देखिए और अनुभव लीजिए कि जो आप चाहते हैं बहुधा वही कर रहे हैं या नहीं? यदि यही शक्ति आप अपने में बढ़ाएँगे तो आपको निःसन्देह अनुभव कर लीजिए की आपकी आँख आपकी इच्छा के बिना देख नहीं सकती, आपकी आज्ञा के बिना आपका कान सुनने में असमर्थ है, इसी प्रकार अन्य (देव) इन्द्रिय भी आपको शक्ति से ही कार्य कर

सकते हैं। अपने ही शरीर में अनुभव कर लीजिए कि आपका वैभव कितना बड़ा है। आप सब देवों के राजा हैं। ३३ देव आपके ३३ अवयवों में हैं। उनको आप चला रहे हैं। ३३ देवाताओं के अंश जिस आपके आत्मा के अनुचर हैं, उस आपकी योग्यता हीन और दीन कौन कह सकता है? वेद कहता है कि आप इन्द्र हैं, आप्र देवों के अधिष्ठाता हैं। आप अपने ही शरीर में इन देवाताओं से प्रतिक्षण कार्य करा रहें और फिर आप अपनी विलक्षण शक्ति को भूल रहे हैं यह कितना आश्चर्य हैं? इसलिए अपनी आत्मशक्ति को न भूलिए।

(३) **अग्नि**—यह अग्नि शब्द भी जीवात्मा परमात्मा का वाचक है। यह शब्द तेज गति और उष्णता का वाचक है। यदि परमात्मा का अग्नि सब विश्वभर में व्यापक है तो आपकी शक्ति अपने शरीर में फैल रही है। एक बड़ा भारी और बड़े-बड़े जंगलों को जला रहा होगा और दूसरा छोटा अग्नि होगा और एक ही तिनके को जला रहा होगा, परन्तु आप इसी बात को सोचिए कि दोनों के अग्निपन में क्या भेद है? छोटे अग्नि में भी वही गुण हैं और बड़े में भी वही गुण हैं। आप अपने-आपको अग्नि समझ लीजिए, आपका परिणाम और आकार छोटा है तथापि गुण की दृष्टि से आप हीन नहीं है।

(४) **ब्रह्म**—यह ब्रह्म भी जीवात्मा परमात्म का वाचक वेद में है। ज्ञान और महत्त्व ये इसके अर्थ हैं। परमात्मा सर्वज्ञ हैं, परन्तु आपका भी चित्स्वरूप ही है। परमात्मा का महत्त्व सबसे श्रेष्ठ है तथापि आपके शरीर में आपका कोई कम महत्त्व नहीं है, जब इस शरीर को आप छोड़ देते हैं, तब इस शरीर की कितनी दुर्दशा होती है, इसका विचार कीजिए, तो आपको पता लग जाएगा कि यहाँ इस शरीर में आपका महत्त्व कितना है। अर्थवेद में कहा है कि "जो पुरुष में ब्रह्म देखते हैं वे परमेष्ठी को जानते हैं।"—अथर्व० १०।७।१७। इसलिए यदि आप अपनी महत्ता को जानते नहीं, तो सम्भव ही नहीं है कि परमात्मा को भी आप जान सकें। परमात्मा का ज्ञान आपके पीछे होगा, उससे पहले आपको स्वयं अपना ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

(५) **सोम**—इसके अनेक अर्थ हैं, परन्तु यह शब्द भी जीवात्मा परमात्मा का वाचक वेद में है। इसके शान्ति आदि गुण प्रसिद्ध हैं जो आत्मा परमात्मा में समान हैं। षोडश कलाओं से जैसा चन्द्रमा युक्त है, वैसा ही जीवात्मा युक्त है। "षोडशी अथवा इन्द्र" वेद में प्रसिद्ध है,

वही सोलह कलाओं से युक्त आत्मा है। जब जीवात्मा में भी सोलह आत्मिक शक्तियाँ विद्यमान हैं, तब कौन उसको हीन कह सकता है? आप अपनी सोलह शक्तियाँ का अपने व्यवहार में भी अनुभव कर सकते हैं। यदि सभी शक्तियाँ का अनुभव नहीं हो रहा है, तो न सही, जितना अनुभव आ रहा है, उससे आप अनुमान कर सकते हैं कि आप केसे असाधारण शक्तिशाली हैं।

इसी प्रकार वरुण, मित्र, पूषन् आदि सभी शब्द प्राय: जीवात्मा परमात्मा के वाचक वेद में हैं। एक "परमेष्ठी" शब्द ही ऐसा है कि जो जीवात्मा का वाचक नहीं है। परमेष्ठी शब्द अपरिच्छिन्न आत्मा का अर्थात् परमात्मा का वाचक है और परिच्छिन्न भी वाचक होते हैं। आप जानते ही हैं कि वेद में सब नाम यौगिक और गुणबोधक होते हैं। सभी शब्द अन्वयर्थक अर्थात् सार्थक हुआ करते हैं। इसलिए वेद जिसका जैसा वर्णन करता है, उस दृष्टि से वह वैसा ही होता है। जो शब्द जीवात्मा और परमात्मा के लिए समान हैं वे बता रहे हैं कि दोनों का साम्य उन गुणों में है। जैसा "अज" शब्द बता रहा है कि जीवात्मा और परमात्मा वस्तुत: अजन्मा तथा प्रेरक हैं। दोनों के गुण समान होने के कारण ही दोनों के लिए "अज" शब्द प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अग्नि, इन्द्र आदि शब्दों के विषय में समझ लीजिए।

जब दोनों के गुण बहुधा एक-जैसे ही हैं, तो जीवात्मा की हीनता केसा सिद्ध हो सकती है? पहाड़ों को जलाने वाला अग्नि बेशक बड़ा है, परन्तु एक तिनके को जलाने वाला अग्नि भी वैसे ही गुणों से सुशोभित है और वह भी अपनी शक्तियों का विकास करने का सामर्थ्य रखता है। जीवात्मा यद्यपि परिच्छिन्न है तथापि इसकी शक्तियाँ कहाँ तक बढ़ सकती हैं, इसकी मर्यादा किसी ने लिखी नहीं है, क्योंकि इसकी विकास की मर्यादा इसके पुरुषार्थ पर निर्भर है। आपकी शक्ति उतनी ही है कि जितना पुरुषार्थ आपने किया था और आप जितना कर रहे हैं। इसलिए परमात्मा की अपेक्षा जीवात्मा की परिच्छिन्नता मानने पर भी इसको हीन और दीन कहना अवैदिक है और नि:सन्देह आत्मघात है।

आप जब अपनी शक्ति को जानेंगे तब आप अपने को कभी हीन और दीन नहीं कह सकते हैं। वे हीन दीनता के विचार अवैदिक हैं। मतमतान्तरों के कारण ये वैदिक धर्मियों के मन में घुस गये हैं। और

वैदिक धर्म का अभिमान जागृत होने पर भी वेदमन्त्रों के ज्ञान की जागृति न होने के कारण, इस समय में भी, वे ही विचार हममें जैसे-के-तैसे ही हैं।

वेद आपको कह रहा है कि, आप इस वाक्य का नित्य स्मरण रखिए कि "**अदीनाः स्याम शरदः शतं**"। हा सौ वर्ष पर्यन्त दीन और दुर्बल न होते हुए बढ़ते रहेंगे। पराधीन और परतन्त्र कभी नहीं रहेंगे। स्वातन्त्रय और स्वावलम्बन हमारा नैसर्गिक अधिकार है। आप हीन और मलीन विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान न दीजिए। आप ऐसे ओजस्वी विचार अपने मस्तिष्क में रखिए कि जो उत्साह का वायुमण्डल आपके चारों ओर उत्पन्न कर सकते हों। अपने मित्र और अपने साथी ऐसे ही चुन लीजिए कि जो उक्त प्रकार के विचार ही धारण करते हैं।

आप यत्न करके "अ-दीन" बनिए, आप अपने-आपको निर्भय समझिए और उन्नति की शक्ति अपने ही अन्दर अनुभव कर लीजिए। फिर आप सचमुच कह सकते हैं कि-

"अदीनाः स्याम शरदः शतम्।
भूयश्च शरदः शतात्॥"

सौ वर्ष की आयु का कार्य

मनुष्य की आयु साधारणतः सौ वर्ष की है। विशेष प्रयत्न करने पर बढ़ती है तथा दुराचरण करने से आयु घटती भी है। योग का साधन, आसन, प्राणायाम आदि नियमपूर्वक करने से, आहारविहार योग्य प्रमाण करने से, चिन्ता को दूर करने और मन शान्त और प्रसन्न रखने से आयु की वृद्धि हो सकती है। आजकल अल्प आयु में मनुष्यों की मृत्यु की वृद्धि हो सकती है। आजकल अल्प आयु में मनुष्यों की मृत्यु हो रही है। इसका कारण ब्रह्मचर्य का अभाव, दुर्व्यसनों का प्रभाव तथा अन्य प्रकार के हीन व्यवहार हैं।

मद्य, तमाखू, चाय, कॉफी आदि दुष्ट व्यसन प्रतिदिन फैल रहे हैं। व्यसनी मनुष्य का शरीर क्षीण होता ही है और उसका नाश अल्प आयु में होगा ही, परन्तु विशेष शोक की बात यह है कि व्यसनी मनुष्य के सन्तानों में जन्म से रोगी रक्त होने के कारण अस्थिर वीर्य होता है। इसलिए व्यसनी मनुष्यों के सन्तान न केवल निर्बल ही होते हैं, परन्तु सदा रोगी होते हैं। तमाखू पीने वाले पिता के पुत्र तारुण्य के पूर्व ही वीर्यहीन होते हैं तथा जवानी में ही बुड्ढे दीखने लग जाते हैं। शराब पीनेवाले पिता के पुत्र प्रायः निर्बुद्धि और चंचलवृत्ति के निकलते हैं। चाय पीनेवाले माता-पिता के सन्तान कब्ज, बद्धकोष्ठ आदि बीमारी से क्लेश भोगते हैं। इसलिए व्यसनाधीन मनुष्य को उचित है कि वह अपने सन्तानों के हित के लिए तथा राष्ट्र के उपकार के लिए व्यसनों से दूर रहे और योगाभ्यास द्वारा अपना स्वास्थ्य ठीक करके ही उत्तम वीर सन्तान उत्पन्न करे।

वेद का आर्दश यदि मनुष्य के मन में जागृत रहेगा तो निःसन्देह मनुष्य व्यसनों के कीचड़ में गिर नहीं सकता। दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन प्रयत्न होना चाहिए। **'भूयश्च शरदः शतात्'**। 'सौ वर्ष से भी अधिक जीना चाहिए' यह वेद का कथन है। हे प्रिय पाठको! आपके मन में वेद विषय में श्रद्धा है इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु केवल श्रद्धा से कार्य नहीं चलेगा। क्या आप 'प्रतिदिन दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं?' यदि नहीं तो आपकी वेद पर की श्रद्धा का तात्पर्य क्या है? प्रतिदिन प्रयत्न होगा तो ही कार्यभाग

होगा, यह स्मरण रखिए। सौ वर्ष जीने का आपको जन्मसिद्ध अधिकार है, आप अपनी आयु बढ़ा सकते हैं। यदि प्रयत्न होगा तो नि:सन्देह आयु की वृद्धि होगी।

आप छोटेपन से बालकों के मन में यह बात डालने का प्रयत्न कीजिए कि उनके अनेक धार्मिक कर्त्तव्य में से मुख्य धार्मिक कर्त्तव्य यह है कि आयु की वृद्धि के लिए प्रतिदिन प्रयत्न करना। यदि आयु होगी तो सब धर्म का आचरण हो सकता है, यदि आयु न होगी तो क्या धर्म पाला जा सकता है? इसलिए आुय की बड़ी भारी आवश्यकता है। मन के निश्चय से ही प्रयत्न किया जा सकता है और प्रयत्न से सिद्धि भी प्राप्त हो सकती है।

सौ वर्ष की आयु प्राप्त करके जो कार्य करना वेद को अभीष्ट है वह निम्न मन्त्रों में आप देख सकते हैं—

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं।
—ऋ० ७।६६।१६

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं।।
शृणुयाम शरदः शतं। प्र ब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः शतं। भूयश्च
शरदः शतात्।। —यजु० ३६।२४

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं।।
बुद्ध्येम शरदः शतं। रोहेम शरदः शतं।।
पूषेम शरदः शतं। भवेम शरदः शतं।।
भूयसी शरदः शतात्।। —अथर्व० १९।६७

पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं।।
नन्दाम शरदः शतं। मोदाम शरदः शतं।।
भवाम शरदः शतं। शृणवाम शरदः शतं।।
प्र ब्रवाम शरदः शतं। अजिताः शरदः शतं।।
—तै० आरण्य० ४।४२

यह वैदिक धर्म का सन्देश है। आयु की भूमि में ही धर्म का उद्यान लगाना है। आयु भर में निम्न बातें अवश्य करनी चाहिए—

(१) **जीवेम शरदः शतं**—सौ वर्ष धार्मिक जीवन व्यतीत करना।

सदाचार के साथ दीर्घजीवन प्राप्त करना।

(२) **पश्येम शरदः शतं**—सब जगत् का अच्छी प्रकार निरीक्षण करना। यों ही देखना नहीं, किन्तु विचारपूर्वक निरीक्षण करना।

(३) **शृणुयाम शरदः शतं**—अच्छे उपदेश सुनना, बुरी बात नहीं सुनना चाहिए।

(४) **बुध्येम शरदः शतं**—सौ वर्ष पर्यन्त ज्ञान की वृद्धि करने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान ही मानवी स्वरूप है।

(५) **प्रब्रवाम शरदः शतं**—जो ज्ञान प्राप्त हुआ होगा उसका परोपकार के लिए दूसरों को उपदेश करना। ज्ञान प्रचार का कार्य करना।

(६) **रोहेम शरदः शतं**—सौ वर्ष पर्यन्त उन्नति की प्राप्ति करने का कार्य करना।

(७) **पूषेम शरदः शतं**—सौ वर्ष पर्यन्त पुष्ट होने का प्रयत्न करना। कोई कार्य ऐसा नही करना कि जिससे क्षीणता प्राप्त हो सके।

(८) **भवेम शरदः शतं**—सर्वत्र विजय प्राप्त करना।

(९) **नन्दाम शरदः शतं**—आनन्द की प्राप्ति करना।

(१०) **मोदाम शरदः शतं**—चित्त को प्रसन्नता और शान्ति रखना, कभी चिन्ता और उद्वेग नहीं करना।

(११) **अजिताः स्याम शरदः शतं**—कभी परजित नहीं होना, शत्रु से अपना बल सदा अधिक रखना।

(१२) **अदीनाः शरदः शतं**—कभी दीनता नहीं धारण करना। सदा उच्चता, उच्च विचार धारण करना और उत्साह का जीवन व्यतीत करना।

(१३) **भूयसीः शरदः शतात्**—सौ वर्ष से अधिक आयु प्राप्त करके उस सम्पूर्ण दीर्घ आयु में उक्त कार्य उत्साह से करने चाहिए।

इन मन्त्रों में मानवी जीवन का धार्मिक कार्यक्रम दिया है। आशा है कि पाठक इन मन्त्रों को प्रतिदिन स्मरण करेंगे और स्वयं धर्म के आचरण में लाने का यत्न कीजिए। वैदिक धर्म को शब्दों में ही न रखिए। व्याख्यानों से प्रचार न कीजिए, परन्तु अपने प्रतिदिन व्यवहार से धर्म का प्रचार कीजिए।

मृत्यु विजय

अथर्ववेद काण्ड १२, सूक्त २, पर्याय ९ में दस मन्त्र हैं। इसमें कवितामयी भाषा में मृत्यु पर विजय पाने के उपाय बताए गये हैं। मृत्यु से न डरना तथा दीर्घजीवी होने के लिए दृढ़-संकल्प धारण करना और उसे रोकने वाली भौतिक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेना मृत्यु से बचने के ये ही दो उपाय हैं। इन मानसिक और भौतिक दोनों उपायों का इन मन्त्रों में रोचक ढंग से वर्णन हुआ है। नीचे मन्त्रों का शब्दार्थ दिया जा रहा है। पाठक उसे पढ़ें और उसका मनन करें।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु॥ १॥

अर्थ–(**मृत्यो**) हे मौत ! (**परं**) दूसरे (**पन्था अनु**) रास्ते पर (**परेहि**) दूर चला जा (**यः**) जोकि (**एष**) यह (**ते**) तेरा (**देवयानात्**) देव पुरुषों के रास्ते से (**इतरः**) दूसरा रास्ता है (**ते**) तुझ (**चक्षुष्मते**) आँखों वाले और (**शृण्वते**) कानों वाले को (**ब्रवीमि**) कहता हूँ कि (**इह**) हमारे इस घर में (**इमे**) ये (**वीराः**) वीर पुरुष (**बहवः**) बहुत (**भवन्तु**) होवेंगे।

मौत! आँख खोलकर देख ले और कान खोलकर सुन ले। हम देव-मार्ग़ पर चलने वाले लोग हैं। हमारे पास मृत्यु नहीं आ सकती। वह तो देव-मार्ग से भिन्न मार्ग पर चलने वालों के पास ही जाए। हमारे घर में तो मृत्यु के भय से रहित होकर वीर पुरुष बढ़ेंगे और फूलें-फलेंगे।

इमे जीवा वि मृतैराववृयत्रन् नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम॥२॥

अर्थ–(**इमे**) ये (**जीवाः**) जीवन-शक्ति से युक्त पुरुष (**मृतैः**) मृत पुरुषों से (**वि-आववृत्रन्**) पृथक होकर रहते हैं (**नः**) हमारे लिए (**अद्य**) आज (**भद्रा**) मंगलकारिणी (**देवहूतिः**) देव पुरुषों या दिव्य गुणों की पुकार (**अभूत्**) हुई है। हम आनन्द से (**नृतये**) नाचने और (**हसाय**) हँसने के लिए (**प्रांचः**) आगे बढ़ने वाले होकर (**अगाम**) चले हैं (**सुवीरासः**) उत्तम वीर बन कर (**विदथं**) ज्ञान और कर्म का (**आवदेम**) हम उपदेश करते रहेंगे।

हम जीवन शक्ति से युक्त रहें। मृतकों की श्रेणी में मन न जाएँ। दिव्य गुणों की पुकार को हम सुनते रहें। सब क्षेत्रों में उन्नति करने वाले होकर आनन्द का नाच नाचें और हँसी हँसे। परक्रमी वीर रहें। हम में ज्ञान और कर्म का उपदेश करने की शक्ति हो।

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां न गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन।। ३।।

अर्थ–प्रभु कहते हैं कि (**जीवेभ्यः**) जीवन-शक्ति युक्त जीवित पुरुषों के लिए (**इमं**) इस (**परिधिं**) सौ साल जीने की मर्यादा को (**दधामि**) मैं बनाता हूँ (**अपरः**) इस मर्यादा से पार न जाने वाला होकर (**एषां**) इन जीवितों में से कोई भी (**एतं**) इस (**अर्थम्**) प्राप्त करने योग्य मर्यादा को (**नु**) निश्चय से (**मा**) मत (**गात्**) प्राप्त करे अर्थात् इस मर्यादा को पार करने वाला होकर ही हर कोई इसे प्राप्त करे (**पुरुचीः**) बड़ी-बड़ी (**शतं**) सौ (**शरदः**) शरद् ऋतुओं तक (**जीवन्तः**) जीते हुए (**मृत्युं**) मौत को (**पर्वतेन**) पहाड़ से (**तिरदधताम्**) छिपा दो।

सौ शरद् ऋतुओं अर्थात् सौ वर्ष तक प्रत्येक मनुष्य को जीना चाहिए। परमात्मा ने यह मर्यादा बनाई है। इसको पार किये बिना किसी को इस संसार से नहीं जाना चाहिए। कच्ची आयु में होने वाली मौत को सौ की अवधि के पहाड़ से ढके रहना चाहिए।

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय।।४।।

अर्थ–(**यति**) जितने भी (**स्थ**) तुम हो, सब (**यतमानाः**) जीवन में प्रयत्न करते हुए (**जरसं**) बुढ़ापे को (**वृणानः**) वरण करते हुए (**अनुपूर्वं**) बारी-बारी से (**आयुः**) पूर्ण आयु को (**आरोहत**) प्राप्त करो (**तान्**) उन (**वः**) तुम को (**सजोषाः**) सब से समान प्रीति रखने वाला (**सुजनिमा**) उत्तम जन्म देने वाला (**त्वष्टा**) सबको बनाने वाला कारीगर भगवान् (**जीवनाय**) जीवन के लिए (**सर्वम्**) सारी (**आयुः**) आयु (**नयतु**) प्राप्त कराए।

सबको परिश्रम की जिन्दगी व्यतीत करनी चाहिए। बिना बारी के कोई बूढ़ा न हो और न कोई मरे। सब पूरी आयु प्राप्त करें। भगवान् की प्रीति से आयु की वृद्धि से सहायता मिलती है।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम्।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्।।५।।

अर्थ–(**यथा**) जैसे (**अहानि**) दिन (**अनुपूर्वं**) एक दूसरे के पीछे (**भवन्ति**) होते हैं (**यथा**) जैसे (**ऋतवः**) ऋतुएँ (**साकं**) ऋतुओं के साथ क्रम से (**यन्ति**) चलती हैं (**यथा**) जैसा (**अपरः**) पिछला (**पूर्वं**) पहले को (**न**) न (**जहाति**) छोड़ सके (**एवा**) वैसे (**धातः**) हे सबके धारण करने वाले प्रभो! (**एषां**) इन हमारी (**आयूंषि**) आयुओं को (**कल्पय**) बनाइये।

जैसे दिन–रात एक दूसरे के पीछे चलते हैं और ऋतुएँ एक–दूसरे के पीछे आती हैं, वैसे ही हमारी आयुएँ भी ऐसी हों कि पिछला पहले को न छोड़ सके। जिसका समय है वही मृत्यु को प्राप्त हो। ऐसा न हो कि पिता और प्रपिता के जीते ही पुत्र और प्रपौत्र की मृत्यु हो जाए।

अश्मन्वती रीतये सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान्।। ६।।

अर्थ–(**अश्मन्वती**) बहुत पत्थरों वाली संसार–रूपी नदी (**रीयते**) चल रही है (**सखायः**) मित्रो ! (**संरभध्वं**) उत्साहपूर्वक शुभ कर्मों का प्रारम्भ करो (**वीरयध्वम्**) पराक्रम करो। और (**प्रतरत**) इस नदी को तैर जाओ। (**ये**) जो (**अनमीवान्**) रोग रहित (**वाजान्**) अन्नादि भागों की (**अभि**) ओर (**उत्तरेम**) हम तैर कर चलें।

यह संसार एक पथरीली नदी है। बुरे चाल–चलन और रोगादि उसके पत्थर हैं जिनसे टकरा कर मनुष्य की जीवन–नौका इस नदी से सुख–पूर्वक पार नहीं होने पाती। जो उत्साह–पूर्वक शुभ कर्मों का आरम्भ करते हैं और पराक्रम का जीवन व्यतीत करते हैं वे इस नदी को तैर जाते हैं। उन्हें रोग–रहित जीवन प्राप्त होता है और उत्तम वाज–अन्न, बल, ज्ञान–प्राप्त होता है।

उत् त्तिष्ठता प्र तरना सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान्।।७।।

अर्थ–(**सखायः**) मित्रों ! (**इयम्**) यह (**अश्मन्वती**) पथरीली (**नदी**) (**स्यन्दते**) बह रही है (**उत्तिष्ठत**) उठो (**प्रतरत**) इसे तैर जाओ (**ये**) जो (**अशिवाः**) अमंगलकारी (**स्योनान्**) सुखकारी (**वाजान्**) अन्न, बलादि भोगों की (**अभि**) ओर (**उत्तरेम**) तैर कर

हम चलें।

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वम् शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम॥ ८॥

अर्थ—(**वर्चसे**) बल प्राप्ति के लिए (**वैश्वदेवीं**) सबका कल्याण करनेवाली वेद की वाणी को (**आरभध्वम्**) पढ़ो, उसे पढ़कर (**शुद्धाः**) शुद्ध (**शुचयः**) पवित्र तथा (**पावकाः**) औरों को भी अपने जैसे पवित्र बनाने वाले (**भवन्तः**) होकर (**दुरिता**) बुरे (**पदानि**) चाल-चलनों को (**अतिक्रामन्तः**) छोड़ते हुए (**शतं**) सौ (**हिमाः**) हेमन्त ऋतुओं तक-सौ वर्ष तक (**सर्ववीराः**) सारे-के-सारे वीर होकर (**मदेम**) हम आनन्दपूर्वक रहें।

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरा परेभिः।
त्रिः सप्तकृत्व ऋषयः परेता मृत्यु प्रत्यौहन्पदयोपनेन॥ ९॥

अर्थ—(**उदीचीनैः**) उन्नति की ओर चलने वाले (**वायुमद्भिः**) वायु से युक्त (**परेभिः**) श्रेष्ठ (**पथिभिः**) मार्गों से (**अवरान्**) निकृष्ट मार्गों को (**अतिक्रामन्तः**) लाँघते हुए (**परेताः**) गुजर चुके अथवा श्रेष्ठ (**ऋषयः**) तत्त्वदर्शी महात्माओं ने (**त्रिः**) तीन बार और (**सप्तकृत्वः**) सात बार (**मृत्युं**) मृत्यु को (**पदयोपनेन**) उसके पैर उखाड़कर (**प्रत्यौहन्**) मार भगाया है।

जो उन्नति के मार्गों पर चलते हैं और वायु का सेवन करते हैं वे मृत्यु को मार भागते हैं। वायु का हवा अर्थ करने पर भाव यह होगा कि जो प्राणायामादि द्वारा शुद्ध वायु का सेवन करते हैं उनकी आयु लम्बी होती है। वायु का सब को गति देने वाला परमात्मा अर्थ करने पर भाव यह होगा कि जो परमात्मा की भक्ति करते हैं उनकी आयु लम्बी होती है। तीन बार मृत्यु को मार भागाने का भाव यह होगा कि वे स्वास्थ्य के आधार-भूत वात, पित्त, कफ में आने वाले विकारों को रोक देते हैं। सात बार मार भगाने का भाव यह है कि शरीर की रस, रक्तादि सात धातुओं में मृत्यु का लाने वाला कोई विकार नहीं होने देते।

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम॥१०॥

अर्थ—(**मृत्योः**) मृत्यु के (**पदं**) पैर को (**योपयन्तः**) उखाड़ते हुए (**प्रतरं**) उत्कृष्ट (**द्राघीयः**) लम्बी (**आयुः**) आयु को

(**दधानाः**) धारण करते हुए (**एत**) आओ (**सधस्थे**) अपने-अपने घर में (**आसीनाः**) बैठे हुए (**मृत्युं**) मौत को (**नुदत**) भगा दो (**अथ**) और फिर (**जीवासः**) जीवित रहते हुए हम सब (**विदथम्**) ज्ञान और कर्म का (**आवदेम**) उपदेश करें।

मानवी आयुष्य

(१) प्राचीन काल में आर्यावर्त में दीर्घायुषी लोग कितनी आयु तक जीते रहते थे?

महाभारत आदि ग्रंथों का निरीक्षण करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि, प्रचीन भारतवर्ष में बड़े दीर्घायुषी मनुष्य हुआ करते थे, प्रायः पांच हजार वर्ष हो चुके हैं, जब कि भारतीय युद्ध हुआ था। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण, भीष्मपितामह आदि अनेक पुरुष इस भारतभूमि के उद्धार के लिये पराकाष्ठा का प्रयत्न कर रहे थे। उस समय के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में भगवान् श्रीकृष्ण महाराज का पुरुषार्थ सबसे श्रेष्ठ था इसमें कोई सन्देह नहीं। श्रीकृष्णजी महाराज शूरों में अत्यन्त प्रभावशाली वीर, विद्वानों में वेदशास्त्रज्ञ श्रेष्ठ विद्वान्, तत्त्वज्ञानियों में शिरोमणि तत्त्वज्ञानी, योगियों में श्रेष्ठ योगेश्वर, राजनैतिकों में प्रसिद्ध राजकारणपटु, वक्ताओं में उत्तम वक्ता, व्यवहारदक्षों में व्यवहार चतुर, बलवानों में अत्यंत बलवान् थे। बलवान् दुष्ट शत्रुओं का निःपात करके, निर्बल सज्जनों के अधिकार सुरक्षित करने के लिये उनके प्रयत्न बाल्यपन से लेकर मरणपर्यन्त अव्याहत चलते रहे। तात्पर्य उनकी सब आयु भारतवर्ष की राष्ट्रीय भवितव्यताको उच्चतर बनाने के झगड़े में व्यतीत हुई। इस प्रकार लोकोतर पुरुष १२५ वर्षपर्यन्त जीता रहा—

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम।
शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो॥

—श्री० भागवत० ११।६।२५॥

ब्रह्मदेव श्रीकृष्ण के साथ बातचीत करने के समय कहते हैं, कि "यदुवंश में अवतीर्ण होकर आपको आज १२५ वर्ष व्यतीत हुये।" अर्थात् इसके पश्चात् यादवों की आपस की लड़ाई हो गई, और बलराम जी की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का देहावसान हुआ।

बलराम श्रीकृष्ण जी से कम से कम एक वर्ष बडे थे। इसलिये मृत्यु के समय इनकी आयु १२६ वर्षों से कम नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण और बलराम की मृत्यु की समय उनके पिता तथा माता जीते थे। इसलिये वृद्ध वसुदेव की आयु कम से कम श्रीकृष्ण की आयु की

अपेक्षा ३० वर्ष अधिक होनी चाहिए। क्योंकि श्रीकृष्ण उनका आठवां पुत्र था।

राजा कंस ने वसुदेव और देवकीजी को जेलखाने में बंद किया था। और उनकी आठों सन्तानें जेल में हि उत्पन्न हुई थी। आठ सन्तान उत्पन्न होने के लिये दस वर्ष की अवधि कोई अधिक नहीं। तथा पहली सन्तान बीसवें वर्ष हुई, ऐसा मानने पर श्रीकृष्ण के जन्म के समय वसुदेव की आयु ३० वर्ष की होगी। तथा श्रीकृष्ण की मृत्यु के समय वसुदेव की आयु (१२५+३०)= १५५ वर्ष की होगी। देवकी जी की आयु इससे कुछ कम होना सम्भव है, क्योंकि आर्यों में पति की आयु की अपेक्षा पत्नी की आयु न्यून हुआ करती थी। श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् वसुदेव को पुत्रशोक होने का वर्णन है–

देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ।
कृष्णरामवपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम्॥

–श्री० भागवत० ११।३१।१८॥

"देवकी, रोहिणी और वसुदेव अपने दोनों बलराम और श्रीकृष्ण का निधन सुनकर शोक करते मूर्छित हो गये।"

तं शयानं महात्मानं वीरमानकदुंदुभिम्॥
पुत्रशोकेन संतप्तः ददर्श कुरुपुंगवः॥

–महा० मौसलपर्व॥

कृष्ण की मृत्युवार्ता सुनकर वसुदेव के पास अर्जुन पहुंचा, जिस समय "महात्मा वीर वसुदेव पुत्रशोक से संतप्त हुआ पड़ा था।" यह वर्णन महाभारत में आया है। इस वर्णन से पता चलता है कि वसुदेव की आयु मृत्यु के समय डेढसौ वर्षों से किसी प्रकार भी कम नहीं हो सकती। देवकी और रोहिणी भी सवा सौ से अधिक आयु वाली स्त्रियां थी, ऐसा भाव स्पष्ट होता है। क्योंकि श्रीकृष्ण की मृत्यु से देवकी और रोहिणी शोक करती करती मूर्छित हो गयी थी। इसलिये श्रीकृष्ण की आयु की अपेक्षा इनकी आयु न्यून से न्यून १६ वर्ष अधिक होनी चाहिये। अस्तु इस प्रकार इनकी आयु देखने के पश्चात् भीष्म पितामह की आयु देखेंगे–

राजा शंतनु की प्रथम धर्मपत्नी गंगाजी का अष्टम पुत्र सत्यव्रत, जिसका आगे जाकर भीष्म नाम इसलिये प्रसिद्ध हुआ कि, उसने आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने की भयानक प्रतिज्ञा करके, अंत तक

उस कठोर प्रतिज्ञा का अच्छी प्रकार पालन किया। भीष्म के जन्मते ही गंगाजी अपने पिता के घर गई और फिर पति के घर वापस न आई। इस कारण भीष्म का बालपन माता के घर में ही व्यतीत हुआ।

वसिष्ठ ऋषि के गुरुकुल में भीष्म का अंगोंसहित पूर्ण वेदाभ्यास हुआ। शुक्राचार्य जी के पास से आसुरी शस्त्रास्त्रविद्या प्राप्त की। आंगिरस बृहस्पति के गुरुकुल में इनका समृतिशास्त्रों का अध्ययन हुआ। प्रतापी जामदग्न्य परशुराम से इन्होंने दैवी शास्त्रविद्या प्राप्त की। इस प्रकार मातृगृह में बाल्य आयु व्यतीत करने के पश्चात् चारों गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक विद्याध्ययन करके, माता के पास भीष्म लौट आया, और इसी समय ब्रह्मचारी भीष्म गंगा के पास से राजा शंतनु के निकट पहुंचाया गया और अपने पिता के निकट पहुंचते ही उसको यौवराज्य का अभिषेक हुआ। अर्थात् भीष्म की यौवराज्याभिषेक के समय आयु २० वर्षों से भी कम नहीं हो सकती।

यौवराज्य का अभिषेक होने पर राजा शंतनु के मन में द्वितीय विवाह करने की बुद्धि सूझी, और धीवरकन्या सत्यवती जी से वृद्ध राजा का विवाह हुआ। सत्यवती का पिता दासराज तबतक अपनी कन्या राजा शंतनु को देने के लिये सन्नद्ध नहीं हुआ। जबतक भीष्म ने "आजन्म ब्रह्मचर्य पालन की कठोर प्रतिज्ञा" न की। इससे ज्ञात होता है, कि शंतनु का द्वितीय विवाह भीष्म के २२ वर्ष की आयु में हुआ।

राजा शंतनु से सत्यवती के गर्भ में दो पुत्र हुए। (१) चित्रांगद और विचित्रवीर्य। विचित्रवीर्य के बालपन में ही राजा शंतनु का देहावसान हुआ। शंतनु की मृत्यु के पश्चात् भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने सापत्न भाई चित्रागंद को राज्यगद्दी पर बिठाया। इस समय चित्रांगद बड़ा प्रौढ अर्थात् राज्य करने योग्य बन गया था। हसलिये इस समय चित्रांगद की आयु २० वर्ष की(२२+२० = ४२) वर्ष की होती है।

चित्रांगदने राज्यगद्दीपर बैठते ही अपनी शूरता से चारों ओर के सैकड़ों राजाओं का पराभव करके अपना प्रभाव बहुत जमाया। इस समय गंधर्वराज के चित्रांगद का वैर उत्पन्न हुआ। सरस्वती नदी के तट पर गंधर्वराज के साथ चित्रांगद तीन वर्ष तक घनघोर युद्ध होता रहा, जिसमें चित्रांगद मारा गया। चित्रांगद का राज्यशासन केवल आठ वर्षों का माना जाय तो उनकी मृत्यु के समय भीष्म की आयु (४२+८) ५० वर्ष तक पहुंचती है।

प्रतापी चित्रांगद के पश्चात् भीष्म ने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को बालपन में ही राजगद्दी पर बिठलाया, क्योंकि वह स्वयं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार न शादी कर सकते थे, ओर न राजगद्दी पर बैठ सकते थे। इसलिये भीष्म के नेतृत्व में इस समय कुरुराज्य पर बाल राजा ही आरूढ हुआ।

यहां एक बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि, चित्रांगद के २५ या ३० वर्ष की आयु में मारे जाने के समय भी उसका भाई विचित्रवीर्य राज्यशासन के योग्य अर्थात् यौवन दशा को प्राप्त नहीं हुआ था। इस से सिद्ध है कि चित्रांगद और विचित्रवीर्य की आयु में कम से कम १२ वर्ष का अन्तर होना चाहिये। जिससे मृत्यु के समय चित्रांगद की २८ वर्ष की आयु मानी जाये, तो विचित्रवीर्य की उस समय १६ वर्ष की मानी जा सकती है। अथवा २।४ वर्ष इससे कम।

पांच चार वर्ष के पश्चात् विचित्रवीर्य के प्रौढ़ होने पर काशीराज की अंबिका और अंबालिका नामक दो पुत्रियों से उसका विवाह हुआ। अर्थात् इस समय भीष्म की आयु (५०+५) ५५ वर्ष तक पहुंच चुकी थी। विवाह होने के पश्चात् ७वें वर्ष विचित्रवीर्य क्षयरोग से बीमार हो गया और ८वें वर्ष इस लोक से चल बसा। इस समय भीष्म की आयु (५५+८) ६३ वर्ष माननी योग्य है।

चित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों पुत्रहीन मरे थे। इसलिये अब आगे राज्य पर किसको बिठलाना चाहिये, इसका विचार शुरू हुआ। सत्यवती ने भीष्म से कहा कि, अंबिका, अंबालिका से नियोग करके पुत्र उत्पन्न करो। परन्तु भीष्म ने नहीं माना। इसलिये द्वैपायन व्यासजी के साथ नियोग कराके धृतराष्ट्र और पांडु कुरु वंश के आधार उत्पन्न किये गये। अर्थात् इनके जन्म के समय भीष्म की आयु (६३+२) ६५ वर्ष की हो चुकी थी।

सत्यवती का विवाह राजा शंतनु के साथ होने के पूर्व ही सत्यवती के गर्भ से व्यास का जन्म हुआ था। अर्थात् व्यास की आयु भीष्म की अपेक्षा १६ वर्ष से न्यून मानी जा सकती है। इस नियोग के समय व्यास की आयु ५० वर्ष के करीब होगी और सत्यवती जी की आयु ६५ वर्ष के करीब होगी है।

धृतराष्ट्र अंधा होने के कारण राज्य के अयोग्य ठहरा और प्रौढ होते ही पांडु को राज्य मिला। इतना होने के लिये कम से कम १८ वर्ष

संपूर्ण होने आवश्यक हैं। इसलिये पांडु के राज्यभिषेक के समय भीष्म की आयु (६५+१८) ८३ वर्ष होना संभव है। पांडु ने १०-१२ वर्ष अच्छी प्रकार राज्य किया था, जिसके पश्चात् उसको पांडुरोग होने से वह हिमालय की पहाड़ियों पर जा कर रहने लगा। और धृतराष्ट्र को राजगद्दी मिली। इस समय भीष्म की आयु (८३+१२) ९५ वर्ष से कम नहीं मानी जा सकती।

इसके पश्चात् ४-५ वर्षों की अवधि में धर्मराज और दुर्योध न आदिका जन्म हुआ। अर्थातृ पांचों पांडवों के जन्म के समय भीष्म लगभग सौ वर्ष की आयु को प्राप्त हो चुके थे, और इसी कारण सबलोग इनको "वृद्ध पितामह" कहते थे। धर्मराज और दुर्योधन की आयु में १-२ वर्ष का अन्तर प्रतीत होता है।

पांडव विद्याभ्यास करके जब यौवनदशा को प्राप्त हुए तब ध ृतराष्ट्र के मन में वैरभाव उत्पन्न हुआ। और राजनैतिक कणिक से मिलकर कुछ दुष्टविचार करने लगे और लाक्षागृह में पांडवों को जलाना सर्वसम्मति से निश्चय हुआ। इस व्यूह में दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण, ध ृतराष्ट्र आदि संमिलित थे। परन्तु पांडव बच गये। इस समय युधिष्ठिर की आयु २० वर्ष से कम क्या हो सकती है? अर्थात् भीष्मपितामह की आयु भी १२० वर्ष से कम न होगी।

इसके पश्चात् प्राय: १०-१२ वर्ष तक पांडवों को कष्ट ही के दिन रहे। कौरवों और पांडवों में बड़े छल और कपट चल रहे थे। अंत में लोक-सम्मति पांडवों के पक्ष में है, ऐसा जानकर धृतराष्ट्र, दुर्योध न आदि ने पांडवों के साथ सुलह की, और राज्य को दो हिस्से करके एक पांडवों को और एक कौरवों को दिया गया। उसमें पाडवों के हिस्से में राज्य का वह विभाग आया था,कि जो प्राय: अच्छी प्रकार बसा हुआ नहीं था। इस समय युधिष्ठिर की आयु न्यून से न्यून ३२ वर्ष की और भीष्मपितामह की आयु १३२ वर्ष की मानी जा सकती है।

इन्द्रप्रस्थ में पांडवों का राज्य प्रारम्भ होने से उस प्रान्त में ही अच्छे-अच्छे लोग आकर बसने लगे और आहिस्ते-आहिस्ते वहां की रौनक बढ़ने लगी। प्राय: २५ वर्षों में पांडवों ने दिग्विजय करके अपना राज्यवैभव बहुत बढ़ाया और राजसूय यज्ञ किया। इस समय युधिष्ठिर की आयु ५७ वर्ष की और भीष्म की १५७ वर्ष की हुई थी।

राजसूय यज्ञ में पांडवों का ऐश्वर्य देखकर दुर्योधन के मन में द्वेष

उत्पन्न हुआ और उनसे छीनने के लिये कपटद्यूत की रचना की गयी। द्यूत में हार होने से पांडवों का १२ वर्ष बनवास और १वर्ष अज्ञातवास हुआ। बनवास की समाप्ति के समय युधिष्ठिर की आयु (५७+१३) ७० वर्ष की थी और भीष्मपितामह १७० वर्ष के बन चुके थे।

बनवास और अज्ञातवास की समाप्ति के पश्चात् कुछ समय दोनों पक्षों में बातचीत होने में व्यतीत हुआ और पश्चात् भारतीय महायुद्ध हो गया। अज्ञातवास समाप्त करके ज्येष्ठ १० तिथी के दिन विराट नगरी में पांडव प्रकट हुये। आषाढ मास में उत्तरा और अभिमन्यु का विवाह हुआ। पश्चात् उपलव्य नामक सरहद के स्थान में जाकर सब पांडवपक्षीय नेताओं ने युद्ध की तैयारी की। कार्तिक शुक्लपक्ष में श्रीकृष्ण सुलह करने के लिये कौरवों के पास आये। परन्तु सुलह न हो सकी। और झगड़ा बढ़ते-बढ़ते मार्गशीर्ष शुक्ल १३ के दिन भारतीय युद्ध का प्रारम्भ हुआ। जो अठारह दिन चलता रहा था। अंत में पौष शुक्ल प्रतिपदा के दिन विजयी पांडव राज्य के अधिकारी बने। इस युद्ध के समय संमिलित वीरों की आयु निम्न प्रकार दिखाई देती है–

१.	भीष्मपितामह	की	आयु	वर्ष	१७०
२.	धृतराष्ट्र राजा	की	आयु	वर्ष	१०५
३.	धर्मराज-युधिष्ठिर	"	"	"	७०
४.	भीम	"	"	"	६९
५.	अर्जुन	"	"	"	६८
६.	नकुल	"	"	"	६७
७.	सहदेव	"	"	"	६६
८.	दुर्योधन	की	आयु	वर्ष	६९

दुर्योधन के भाईयों की आयु उससे कुछ कम मानना उचित है।

९.	विदुर	"	"	"	१०५
१०.	श्रीकृष्ण	"	"	"	८३
११.	द्रोणाचार्य	"	"	"	९०
१२.	कृपाचार्य	"	"	"	९५
१३.	कर्ण	"	"	"	८२

(कुन्ती का पांडु के साथ विवाह होने के पूर्व कुमारी अवस्था में ही कर्ण का जन्म कुन्ती के गर्भ से हुआ था। इसलिये धर्म से १२

वर्ष पूर्व उसका जन्म माना गया है।)

१४. शकुनि " " " ८५

१५. व्यासमहर्षि " " " १५७

युद्ध के पश्चात् व्यासमहर्षि ने भारत रचा और रचना के लिये उनको तीन वर्षों का समय लगा। इससे पता चलता है कि, डेढसौ वर्षों के पश्चात् इस प्रकार का अद्भूत ग्रन्थ लिखने का सामर्थ्य व्यासजी के शरीर में था, ३वर्षों तक काव्यरचना करने का बढ़ा परिश्रमका कार्य इस वृद्धावस्था में भी उन्होंने किया!!

भीष्मपितामह १७० वर्ष की आयु में जवान के समान युद्ध करते थे, और बहुत जख्मी होने के पश्चात् भी मरने तक अपने विस्तरे पर सोते सोते धर्मोपदेश किया करते थे।

भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध ६९ वर्ष की आयु में हुआ और इस समय वे अपने आपको वृद्ध नही समझते थे, परन्तु अभी हमने दुनियां में उपभोग लेना हैं, ऐसाही भाव मन में रखते थे। अर्थात् यह आयु उनकी जवानी की ही थी।

आषोडशात् सप्ततिवर्षपर्यंतं यौवनम्।।–वात्स्यायन-कामसूत्र

'सोलह वर्ष से सत्तर वर्ष तक जवानी है' ऐसा जो वात्स्यायन ने लिखा है, उस बात का हमें अनुभव होता है।

इसके पश्चात् ३६ वर्ष धर्मराजा ने राज्य किया और महान् अश्वमेध किया । और उसके पश्चात् काल के लोग कितनी दीर्घ आयुतक जीते रहते थे।

मृत्यु समय धृतराष्ट्र की आयु १३५ वर्ष से भी अधिक थी। पांडव स्वर्गारोणि समय १०० वर्ष के प्रायः हो चुके थे। और ये सब इसलिये जलदी वन में चले गये कि इनको अपने सम्बं- धियों की मृत्यु के कारण बड़ा दुःख था। यदि आपस के झगड़े न बढ़ते तो ये लोग भी सवासौ वर्ष तक राज्य करते रहते।

ग्रीक लोगों का जिस समय भारतवासियों के साथ परिचय हुआ था, उस समय आर्यावर्त्त में १४० वर्षों के वृद्ध बहुत जीते थे। यह अवस्था विक्रम संवत के पूर्व २-३ सौ वर्षों की है। अरायन नामक ग्रीक इतिहास लेखक लिखता हैं कि "भारत वर्ष में १४० वर्ष की आयु वाले वृद्ध पुरुष बहुत दिखाई देते हैं। और सौ वर्षों की आयु वाले तो अनन्त हैं। तथा इन वृद्धों का एक विशेष नाम हुआ करता है।" ग्रीक

इतिहास लेखक की यह अनुभव की बात थी, इसलिये इसमें असत्यता नहीं हो सकती। महाभारत का साक्ष्य जो ऊपर हमने देखा है वह भी इसके साथ मिलता है, इसलिये ५००० वर्ष पूर्व भारतीय पुरुषों की साधारण आयु १२५ वर्ष तथा तपस्वियों की आयु १७० वर्ष मानी जाती थी, और ऐसा मानना अन्युक्ति नहीं है।

(2) मनुष्यों की आयुष्यमर्यादा वास्तविक कितनी है?

फलज्योतिष के ग्रन्थों में अष्टोत्तरी और विंशोत्तरी ऐसे दो प्रकार गणित के माने जाते हैं। उनमें १०८ तथा १२० वर्ष मानवी आयु मानकर सब गणित किया जाता है। इस फलज्योतिष को कोई ठीक माने या न माने परन्तु यह गणना सिद्ध करती है, कि मनुष्य की आयु पूर्ण आयु १०८ से १२० तक है। तथा इससे अधिक आयु बढ़नी यमनियमादि योग साधनों पर निर्भर है। जैसे कि भीष्म, व्यास आदि कों की आयु १५० से भी अधिक हुई।

इसी प्रकार परशुराम आदि कई अन्य ऐतिहासिक पुरुषों की दीर्घ आयु बताई जा सकती है, परन्तु निबन्ध के विस्तर भय के कारण इतना ही पर्याप्त हैं। अब वर्तमान समय के दीर्घायु वाले पुरुषों के नाम नीचे देता हूं–

(१) वा. मलहारी (गडरिया)(सावंतवाडी) आयु ११५ वर्ष। मृत्यु हुए २२ वर्ष हो चुके।

(२) पं० प्रभाकर शास्त्री (बंबई) आयु १०८ वर्ष।

(३) अंकल जॉनी १३१ वर्ष। जीवित है।

John Shell, now living at Greasy Creek, Leslie County, Ky., at the age of 131 years, is probably the oldest inhabitant of the United States and perhaps of the world. He never used tobacco......... His mind and memory are remarkably bright....... His oldest living child is ninety-seven years old........ Two doctors examined him while in Lexington and they said he had blood pressure of a man of forty-five years....... He walks unaided.

Good Health Vol.LV; No.4, April 1920

(४) म० रामसेठ भुरक्की सुनार (सातारा) आयु १०५ (मृत्यु होकर एक वर्ष हुआ। इनका फोटो चित्रमयजगत् में छपा है।)

(५) स० महमदखान (कोल्हापुर आयु) १०३ मृत्यु हो गई।

(६) स० जाफरखान (कोलहापुर आयु) १०१ मृत्यु हो गई।

महाराष्ट्र में और पंजाब में ८०-९० तक जीते रहनेवाला कई पुरुष मिलेंगे। परन्तु ऊपर उनके ही नाम दिये हैं कि जो सौ से ऊपर आयुवाले हैं। इन पुरुषों को देखने से पता लगेगा कि, सौ से भी अधिक आयु मनुष्य की है।

शतायुर्वै पुरुषः।

"मनुष्य शतायु है।" इस ब्राह्मणवाक्य का अर्थ यह नहीं कि मनुष्य केवल सौ वर्ष तक ही जीता है। क्योंकि इस अवस्था में भी भरतखंड में सौ से ११० वर्ष तक आयु रखनेवाले दीर्घायुषी पुरुष दस पन्द्रह मिल जायेंगे। दो हजार वर्ष पूर्व, जिस समय ग्रीक लोग यहां आये थे, उस समय १४० वर्षों के मनुष्य सैकड़ों की गिनती में मिलते थे, तथा भीष्मपितामह के समय, अर्थात् अब से ५००० वर्ष पूर्व, १७० वर्ष तक जीवित रहने वाले भी दृढव्रती पुरुष कई थे।

इस समय यूरोप में ऐसे कई प्रान्त हैं कि जहाँ १२० वर्ष से भी अधिक आयु वाले पुरुष विद्यमान है। जब यह वास्तविक स्थिति है तब **"शतायुर्वै पुरुषः।"** इसका अर्थ 'केवल सौ वर्ष' मनुष्य की आयु है, ऐसा किस प्रकार हो सकता है?

पुरुष शब्द का अर्थ (**पुरि-षादः**) पुरी अर्थात् नगरी में रहने वाला है। नागरिक, पौर, शहरवासी, Citizen इस अर्थ में मूलतः पुरुष शब्द प्रयुक्त होता था। इस अर्थ को लेकर उक्त वाक्य देखने से ऐसा अर्थ प्रतीत होता है कि "नागरिकों की सर्वसाधारण आयु सौ वर्ष की" समझी जाती थी।

भीष्म के समान कई नागरिक १७० वर्ष तक जीते रहते थे, कोई सौ वर्ष और कोई तीस वर्ष, इस प्रकार औसतन् (Average) आयु सौ वर्ष की समझी जाती थी। जैसा-

भीष्म १७०+धर्म १००+विचित्रवीर्य ३०=३००/३=१०० इस प्रकार सर्वसाधारण नागरिकों की आयु सौ वर्ष की समझी जाती थी। शूर पुरुष युद्ध में जाकर अल्प आयु में मरते हैं, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूचाल आदि आपत्तियों से कइयों की मृत्यु शीघ्र होती हैं। यद्यपि बीमारियां

कम की जा सकती हैं, तथापि उक्त कारणों से कई पुरुषों की मृत्यु अल्प आयु में होना संभव है। इनकी कसर पूरी करने के लिये कई पुरुषों की आयु सौ से अधिक होनी चाहिये। जिससे कईयों की अधिक, और कईयों की न्यून मिलकर सबकी सर्वसाधारण आयु सौ वर्ष की होगी। यही नागरिक जीवन की नीरोगिता परम उच्च आर्दश है। "Ideal healthy state of a Nation" इसी को कह सकते हैं कि जहाँ सर्वसाधारण आयु सौ वर्ष की होती हो।

इस समय भरतखंड के नागरिकों की सर्वसाधारण (औसत) आयु २५ वर्षों से न्यून है। यूरोप, जापान आदि, संस्कार सम्पन्न देशों के नागरिकों की सर्वसाधारण आयु चालीस से साठ तक है। अर्थात् इस समय इस भूमि पर कोई ऐसा देश नहीं जहाँ वैदिक समय की साधारण आयु देखी जा सके; जो कि सौ वर्षों की होनी चाहिये। इसलिये सब देशों के मनुष्यों को उचित है कि वे अपनी आयु बढ़ाने के यत्न में लगें, विशेषतः भारतवासी लोगों को आयु बढ़ाने का यत्न बड़े जोर के साथ करना चाहिये, क्योंकि इस देश के पुरुषों की आयु सबसे गिर गई है; जहाँ ६००० वर्षों के पूर्व इसी देश के वासी नागरिकों की आयु साधारणतया १०० वर्षों की थी। वहाँ आज २५ वर्ष से भी न्यून है। इस कारण हम सबको प्रयत्न करके दीर्घ आयु के विषय में वहाँ तक शीघ्र ही पहुंचना चाहिये।

पुरुष शब्द का 'नागरिक' अर्थ ऊपर दिया है। नागरिकों की आयु सर्वसाधारणतया (औसत) सौ वर्षों की जब होती थी, तब पहाड़ी लोगों की आयु निःसंदेह उससे अधिक हुआ करती होगी। क्योंकि शहर का निवास आयु को घटाने वाला होता है और अरण्यवास आरोग्य बढ़ानेवाला होने से आयु की वृद्धि करने वाला है। इसलिये वैद्यकग्रन्थों में जहाँ आयुष्यवृद्धिक तथा आरोग्यवृद्धि के उपाय कहे हैं, वहाँ नगरवास को छोड़ना और पहाड़ों में अथवा जंगलों में जाकर बसना, भी एक उपाय वर्णन किया है। इसी कारण आजकल यूरोप में, पढ़ाई की व्यवस्था जंगल (Forest School) में करके वहाँ ७-८ दिन प्रतिमास में लड़कों को ले जाकर वन के आयुष्यवर्धक वायु का सेवन कराने का उपक्रम प्रारम्भ हुआ है। 'वही व्यवस्था गुरुकुल प्रणाली में है' अस्तु।

(३) मानवी आयुष्यमर्यादा के विषय में वेद की सम्मति।

अब मानवी आयुष्य के विषय में वेद की सम्मति का विचार करना चाहिये।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

—यजु० ४०।२।

"इस लोक में अपने कर्तव्य करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिये। यही तेरे लिए एक मार्ग है, इससे दूसरा कोई मार्ग नहीं। कर्तव्यकर्म करने से मनुष्य दोषी नहीं होता।"

इस यजुर्वेद मन्त्र में सौ वर्ष पुरुषार्थी जीवन व्यतीत करने का उपदेश किया है। (१) सौ वर्ष जीने की इच्छा करना और (२) सौ वर्ष कर्तव्य कर्म करते रहना, ये दोनों बातें बाल्य के पश्चात् ही होना सम्भव है। इस लिए बाल्यपन को छोड़कर सौ वर्ष तक पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करने की ध्वनि उक्त वचन में प्रतीत होती है। इसी दृष्टि से निम्न वाक्यों का भाव देखना चाहिए—

पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्।।
शृणुयाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतम्।।
अदीनाः स्याम शरदः शतम्। भूयश्च शरदः शतात्।।

—यजु० ३६।२४।।

"सौ वर्ष तक देखें, जीते रहें, सुनें, बोलें, सौ वर्ष तक अदीन अर्थात् दुर्भाग्यरहित होकर रहें, इतना ही नहीं परन्तु सौ वर्षों से अधिक भी जीते रहकर पुरुषार्थ करते रहें।" यह आशय उक्त मंत्र का है। **'भूयश्च शरदः शतात्।'** सौ वर्ष से अधिक आयु की कल्पना यहां निःसंदेह है। और जब तक आयु है, तब तक किसी प्रकार भी दीनता नहीं आनी चाहिए। पराधीनता को दीनता कहते हैं और स्वाधीनता को अदीनता कहते हैं। जो वृद्ध मनुष्य स्वयं देख नहीं सकता, न चलफिर सकता है, वह दीन हुआ है, परन्तु जो वृद्ध मनुष्य भीष्मपितामह के समान १७० वर्ष की आयु की अवस्था में दस दिन तक घनघोर युद्ध कर सकता है, और जख्मी होने के पश्चात् कई महीनों तक बराबर धर्म का उपदेश करता रहता है, उसको 'अदीन' कहते हैं। भीष्मपितामह

मरनेतक उनके सब अवयव स्वाधीन थे, इतना ही नहीं परन्तु अंतिम दिन तक पुरुषार्थ के साथ वे अपना व्यवहार करते थे। यही जीवन है, कि जो उक्त यजुर्वेद के मन्त्र में वर्णन किया है। तथा और देखिये–

पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्।।

–ऋग्० ७।६६।१६।।

पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्।।
बुध्येम शरदः शतम्। रोहेम शरदः शतम्।
पूषेम शरदः शतम्। भवेम शरदः शतम्।
भूयसीः शरदः शतात्।। अथर्व० १९।६७।।

'सौ वर्ष तक देखें, जीते रहें, ज्ञान लेते रहें, बढ़ते रहें, पुष्ट होते रहें, संपन्न होते रहें, इतना ही नहीं परन्तु सौ वर्ष से भी अधिक जीते रहें और उत्पन्न होते रहें।' यह आशय इस मंत्र का है। **'भूयसीः शरदः शतात्।'** यह मंत्र पूर्व मंत्र का ही आशय स्पष्ट कर रहा है। 'रोहेम, बुध्येम, पूषेम।' ये तीन शब्द सौ वर्ष पर्यन्त शरीर की वृद्धि करने का तथा ज्ञान की वृद्धि करने का उपदेश कर रहें हैं। पचास वर्ष होते ही "अब मैं बुढ्ढा हो गया हूं, अब मेरे थोड़े ही दिन बाकी रहे हैं।" ऐसे क्षुद्र विचार इस समय के लोग प्रकट करते हैं। उनको उचित है कि उक्त मंत्र का वैदिक उपदेश वे सुनें और ऐसे सुविचारों से अपने आत्मा का बल बढ़ावें। यहां सौ वर्षों से अधिक रहना हैं, और बढ़ते हुए पुरुषार्थ के साथ रहना है, यह वेद का आशय कभी नहीं भूलना चाहिये।

ऋषिः–यक्ष्मनाशनः। **देवता**–राजयक्ष्मघ्नम्।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्।।१।।
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरंतिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय।।२।।
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाऽऽहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्।।३।।
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा

हविषाहार्षमेनम् ॥४॥
आहार्षविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ ५॥

—ऋ० १०।१६१।५ अथर्व० २०।९६।५॥

—अथर्व० ३।११॥ (अथर्व का पाठ थोड़ासा भिन्न है।)

"तुमको अज्ञात अथवा ज्ञात रोग से हवन के द्वारा मृत्यु से बचाता हूं। यद्यपि तेरा रोग जाता नहीं था, परन्तु अब परमेश्वर की कृपा से निःसंदेह चला जायेगा॥ यद्यपि आयु समाप्त होने वाली हो, यद्यपि आसन्न मरण हुआ हो, अथवा तकरीबन मरचुका हो, उसको भी मृत्यु के मुख से वापस लाकर सौ वर्ष की आयु देता हूं॥ सौ वर्ष की पूर्ण आयु देनेवाले हवन से सब कष्टों को दूर करके पूर्ण आयु की प्राप्ति परमेश्वर की कृपा से हो सकती है॥ सौ शरद ऋतु, सौ हेमन्त और सौ वसन्त ऋतुओं तक बढ़ता हुआ जीता रहे॥ इस हवन से परमात्मा इसको सौ वर्ष की आयु प्रदान करें॥ तू अब वापस आया है, तू अब फिर नया बना है, तेरे सब अंग अच्छे हुए हैं, चक्षु आदि सब इन्द्रियां अच्छी हो गई हैं, और आयु भी तेरे लिये परिपूर्ण प्राप्त हुई है॥"

ये ऋग्वेद के मंत्र आयु का विचार करने के समय देखने योग्य हैं। इनमें (१) बीमारी से अच्छा होकर फिर पूर्ण आयु को प्राप्त करना, (२) हवन से व्याधियों का नाश करना, (३) फिर सब इन्द्रियों को पुष्ट और बलवान करना, आदि भाव हैं। मेस्मेरिझम अर्थात् अपनी इच्छाशक्ति किंवा मानसशक्ति से बीमार की बीमारी ठीक करने, तथा (Suggestion) मानसिक इच्छा शक्ति के इशारे देकर व्याधियां दूर करने के वाक्य उक्त मंत्र में हैं। अस्तु। अब और वाक्य देखिए—

शतं वर्षाणि जीवतु॥ —साम मंत्रब्राह्मण ।१।२।२॥

'सौ वर्ष जीता रहे।' सदा ऐसी ही इच्छा रखनी चाहिये।—

शतं शरद आयुषो जीवस्व॥ —कौशीतकी ब्राह्मण उप०२।११॥

"आयु के सौ वर्ष जिता रहे।" दूसरों के लिये भी ऐसी ही इच्छा प्रदर्शित करनी उचित है। तथा—

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वम् शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम॥

—अथर्व० १२।२।२८॥

"शुद्ध और तेजस्वी होते हुए, सर्व दिव्यगुणयुक्त वर्चस्वी कर्मो को प्रारम्भ कीजिए। जिससे हम सब वीर अर्थात् शूर पुरुष सौ वर्ष तक आनन्द से रहें।"

शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व॥

—अथर्व० २।१३।३॥

"पूरे सौ वर्ष जीता रह और धन तथा पुष्टि प्राप्त करे।"

शतं च जीव शरदः सुवर्चाः। —साम मंत्र ब्रा० १।१।६॥

"सौ वर्ष उत्तम तेज के साथ जीता रह।"

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन॥४॥
यथाऽहान्यनु पूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहाति एवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्॥५॥

—ऋ० १०।१८॥

"मैं सब जीवों के लिये यह आयु की मर्यादा देता हूं, इनमे से कोई भी इस अर्थ को न छोड़े। सब लोग सौ वर्ष की दीर्घ आयु तक जीते रहें, और मृत्यु को पहाड़ों के नीचे दबा दे। जिस प्रकार दिन के पश्चात् दिन आता है और ऋतु के पीछे ऋतु आती रहती है, और जिस प्रकार एक मनुष्य के पीछे दूसरा होता है, उसी प्रकार धाता इनको क्रमपूर्वक आयुष्य अर्पण करे।" तथा—

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः॥२॥
आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः॥६॥

—ऋ० १०।१८॥ अथर्व० १२।२।२४॥

"मृत्यु के पांव को दूर ढकेलते हुए, जब आप दीर्घ आयुष्य को अधिक लंबा बनाकर धारण करके चलेंगे, अर्थात् अपना पुरुषार्थ करेंगे, तब अभ्युदयको प्राप्त होते हुए प्रजा, और धन से युक्त होकर, और पूजनीय बनकर शुद्ध और पवित्र बनेंगे॥ दीर्घ आयु प्राप्त कीजिए और अपनी आयु को श्रेष्ठ बनाइए। एक के पीछे दूसरा चलकर प्रयत्न करता हुआ बड़ा पुरुषार्थ करे। सबका भला करनेवाला परमेश्वर इस लोक में आप की आयु बहुत दीर्घ बनायेगा।"

शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्।। –आश्व०गृ०सू० १।१५।१।।

'इस लोक में सौ वर्ष जीते रहो।'

शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः।। –अथर्व०३।१२।६।।

"हम सब शूर पुरुष सौ वर्ष जीते रहें।" इत्यादि वाक्यों से शौर्य का दीर्घ आयु के साथ सम्बन्ध बताया है, यह ध्यान रखने योग्य है तथा–

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायविशतादु माम्।।

–यजु० ३४।५०।।

"आयुष्य, बल, ऐश्वर्य, पुष्टि, विजयी स्वभाव, तेजस्वी धन ये सब मेरे विजय के लिये मुझे प्राप्त हों।" अर्थात् ये प्राप्त होकर मेरा विजय होता रहे, धनादि प्राप्त होने के पश्चात् आलस्य आदि अवनति क गुणों में मैं न बिगड़ूं, यह भाव यहां है।

आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुगावशम्।।

–अथर्व० १९।२७।८।।

"अपने आयुष्य में पुरुषार्थ करने वालों के साथ जीते रहो। दीर्घायु होकर जीते रहो, मर मत जाओ। आत्मिक बलवालों की जीवन शक्ति के साथ जीते रहो। मृत्यु के वश में न जाओ।" अर्थात् पुरुषार्थ प्रयत्न करके अपमृत्यु का भय हटाकर दीर्घ आयु को प्राप्त करना और संपूर्ण आयु में पुरुषार्थ करते रहना चाहिये।

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभि संविशध्वम्।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथाऽसत्।।

–अथर्व०८।५।२१।।

"इसमें इन्द्र बड़ा प्रभाव रखे, और इसमें सब दिव्य गुण प्रविष्ट हों। सौ वर्ष जीने के लिये तथा उससे भी दीर्घ आयु के लिये इसको बड़ी आयु प्राप्त हो, जिससे यह वृद्धावस्था तक जीवित रह सके।"

इमं विभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः।
सं मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत्।।

अथर्व० १०।३।१२।।

"इस श्रेष्ठता को मैं धारण करता हूं, जिससे मैं दीर्घायुषी तथा सौ वर्ष जीने वाला बनता हूं। इससे मुझे राष्ट्र, शौर्य, पशु और बल प्राप्त हो।" अर्थात् श्रेष्ठता के साथ दीर्घायु प्राप्त होना चाहिये।

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः।
प्रिया श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः॥१॥
अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः॥२॥

—अथर्व० ७।६३॥

"हे ईश्वर ! जो कष्ट हम सहन करके तप करते हैं, उससे हमें ज्ञान की प्रीति हो, उत्तम बुद्धि और दीर्घ आयु तथा उपदेश सुनने में रुचि प्राप्त हो।"

आयुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु॥ —अथर्व० ६।९८।२॥

"दीर्घायुष्य के साथ रहने वाला तेरा शौर्य अजर अर्थात् जीर्ण न होनेवाला हो।" अर्थात् अन्य सब गुणों की वृद्धावस्था अथवा जीर्णवस्था होने पर भी शौर्य कदापि जीर्ण नहीं होना चाहिये।

एह्यश्मानमा तिष्ठाऽश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्॥

—अथर्व० २।१३।४॥

"आओ, इस पत्थर पर ठहरो, इस पत्थर से तेरा शरीर पत्थर के समान सुदृढ़ बने, सब दिव्य गुण तेरे लिये सौ वर्ष की पूर्ण आयु अर्पण करें।" योग्य भोजन करना, उत्तम गुणों केसाथ रहना और शरीर को दृढ़ बनाना, ये तीन बातें हैं कि, जिससे दीर्घ आयु हुआ करती है। तथा—

आयुषे त्वा वर्चसे त्वोजसे बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनां अनु॥

—अथर्व० १९।२६।३॥

"दीर्घ आयुष्य, तेज, बल, सहनशक्ति इन गुणों की प्राप्ति के लिये तुमको धारण करता हूं। जिस प्रकार सुवर्ण के तेजसे तुम चमकते हो, उसी प्रकार लोगों में मै तेजस्वी बनूंगा।" तथा—

आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा॥ यजु० १४।२१॥

"हे मातृभूमि ! दीर्घ आयुष्य, तेज, खेती और आरोग्य के लिये तेरे पास हम आते हैं।" तथा—

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्।।

—ऋ०१०।८५।३९।। अथर्व०१४।२।२।।

"परमात्मा ने इस स्त्री के लिये तेज के साथ फिर आयुष्य दिया है। जो इसका पति है, वह दीर्घायु होकर सौ वर्ष तक जीता रहे।" तथा—

अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि मा नि वर्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन। सन्या मेधया रय्या पोषेण।। —यजु० १२।७।।

"हे तेजस्वी अग्ने ! मेरे पास आयुष्य, तेज, संतान, धन, लाभ, बुद्धि, प्रभुत्व और पुष्टि के साथ आओ।" तथा—

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूष त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।।

—ऋग्० १०।१७।४।। अथर्व० १८।२।५५।।

"दीर्घ आयुष्य सब प्रकार से तेरी रक्षा करे, और पोषक ईश्वर उत्तम मार्ग पर चलते हुए तुम्हें सुरक्षित रखे।" तथा—

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाऽध स्याम सुरभयो गृहेषु।।

—अथर्व० १८।३।१७।।

"आत्मा की चलनी में अपने आपको शुद्ध करते हुए, अशुद्धि, मल(अथवा अपमृत्यु) को धोकर परे ले जाते हैं। और नवीन दीर्घ आयुष्य को धारण करते हैं। पश्चात् हम सब सन्तान और धन के साथ अभ्युदय को प्राप्त होते हुए, अपने घरों में सुगंधरूप बनकर रहें।" तथा—

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन्।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।

—अथर्व०१८।४।५३।।

"पूर्ण अर्थात् उत्तम राजा अन्नों का आच्छादन अर्थात् संग्रह करनेवाला होता है। तथा वीर्य, बल, पौरुष आदि गुणों के साथ आता है। और सौ वर्ष की दीर्घ आयु सब जीवों के लिये धारण करता है।" तथा—

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय।।

—अथर्व० १९।६४।४।।

हे अग्ने ! तू इन समिधाओं से प्रदीप्त हो। हमारे लिये दीर्घ आयु और आचार्य के लिये अमरपन दो।" तथा—

आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचन्ताम्।।

—अथर्व० १९।४।२२।।

"हम सबके लिये आयु, संतति, धन और पुष्टि प्राप्त हो।"

आयुः पवत आयवे।। —ऋग्० ९।६७।८।।

"दीर्घ आयु के लिये अपनी आयु को पवित्र करो।"

आयुः पृथिव्यां द्रविणम्।। —आंध्र, तै०आ० १०।३६।।

'इस पृथ्वी पर आयुष्य ही धन है।' अर्थात् सब धनों में आयुष्य ही श्रेष्ठ धन है। क्योंकि इसी के आश्रय से सब अन्य धनों का उपभोग लिया जा सकता है।

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः।।

—अथर्व० ६।४१।३।।

"जो हमारे रक्षक हमारे शरीररूपी और शरीर में उत्पन्न हुए हैं, वे दिव्य ऋषि(अर्थात् इन्द्रियां) हमको न छोड़े। हे अमर ऋषि गण ! हम मर्त्यों के पास आईये और जीने के लिये अधिक दीर्घ आयुष्य हमें प्रदान कीजिये।" यहां इंन्द्रियों को ऋषि मानकर, दीर्घायु का दान इंन्द्रियों की प्रसन्नता से होना है, यह बात सूचित की है। इंद्रियों का दुरुपयोग करने से आयु का नाश, और इंन्द्रियों का योग्य उपयोग करके उनमें बल बढ़ाने के कारण, आयु की वृद्धि होती है।

अयुर्बृहत्तदशीय तन्मावतु।

—आप०श्रौ०सु० ११।१५।१।। मानव०श्रौ० २।३।७।२।।

"बड़ी आयु प्राप्त करें। परंतु वह दीर्घ आयुष्य हम सबकी रक्षा करे।" दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है, परन्तु दीर्घ आयुष्य से अपनी उन्नति साधन करनी चाहिये। नहीं तो वही दीर्घ आयुष्य अवनतिका साधन बन सकता है। तथा—

आयुर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियम्।। —आप०श्रौ०सु० २०।१३।४।।

"यज्ञ का आयु मीठा और प्रिय होकर पवित्र बनाता है।" अर्थात् सब आयु सत्कर्मों में व्यतीत करने से भला होता है। इसलिये कहा है—

आयुर्यज्ञाय धत्तम्।। –मैत्रा०सं० १।३।१२।। तै०ब्रा० १।१।१।३।।

"अपनी सब आयु यज्ञ अर्थात् सत्कर्म करने के लिये ही धारण करो।" क्योंकि सत्कर्म में सब आयु अर्पण करने से ही अभ्युदय और निश्रेयस की प्राप्ति होती है। यही भाव निम्न मंत्र में है–

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्।। –यजु० ९।२१।।

"अपनी सब आयु सत्कर्मों में अर्पण करो।" आयु आलस्य में खोना अच्छा नहीं, तथा अकर्तव्य और विरुद्ध कर्मों में भी बिगाड़ना नहीं चाहिये। केवल उसको सत्कर्मों में ही लगाना चाहिये।

आयुष्मन्तं मां तेजस्वन्तं मनुष्येषु कुरु।। –मैत्रा०सं० ४।७।३।।

"सब मनुष्यों में मुझे दीर्घ आयु से युक्त और तेज से युक्त करो।"

स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम।।

–अथर्व० ६।४७।१।।

"वह पवित्र परमेश्वर हमें धन दे, तथा हम सब दीर्घ आयु से युक्त होकर एकत्र मिलकर भोजन करने वाले बनें।" तथा–

आयुष्यमग्न्यं प्रतिमु ञ्च शुभ्रम्।। –पारस्कर गृ० २।२।१०।।

"अपना श्रेष्ठ आयुष्य शुद्ध कर छोड़ो।" अर्थात् अपने आयुष्य में कभी बुरा कर्म न करो, कि जिससे आयु को कलंक लगे। तथा–

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परिष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु।।

–अथर्व० १४।२।३९।।

"इस श्रेष्ठ (गृहस्थाश्रम) में ऊपर चढ़ो। अपनी धर्मपत्नी का हाथ पकड़ो। उत्तम मन धारण करते हुए अपनी धर्मपत्नी का आलिंगन करो। प्रजा उत्पन्न करो। इस लोक में आनन्द से रहो। आप दोनों के लिये सूर्य दीर्घ आयु प्रदान करे।" मन्त्र में दीर्घ आयुष्य के साथ सूर्य का संबंध जोड़ा है, यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिये। जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता, वहाँ रहने से मृत्यु जलदी आती है और सूर्य का प्रकाश में बहुत काल व्यतीत करने से आरोग्य और दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है। बहुत से रोग बन्द मकानों में बैठने वालों को होते हैं, परन्तु जो खुली हवा में तथा पवित्र प्रकाश में विचरते हैं, वे आरोग्य संपन्न होते हैं। इसलिये आरोग्य चाहनेवालों को चाहिये कि वे सूर्य प्रकाश से अपनी आयु बढ़ावें तथा घरों में सूर्यप्रकाश लेकर अपने घरका आरोग्य

बढ़ावें। तथा–

दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥ –अथर्व० १४।१।४७॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥

–अथर्व०१४।२।७५॥

"हे स्त्री ! तू पति के घर में जाकर स्वामिनी बन कर रह, परन्तु इस बात को तुम निश्चय जानो कि सौ वर्ष की दीर्घ आयु तक जीने के व्यवसाय में तुम्हें जागना है। सूर्य तेरी दीर्घ आयु बनावे।" विशेषकर यह बात स्त्रियों को इसलिए कही गई है कि स्त्रियां स्वयं मकान के अन्दर बंद रहती हैं और अंध परम्परा के दास मकानों में स्त्रियों को बंद करके रखते हैं। इसलिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि (१) धर्मपत्नी गृह की स्वामिनी है, (२) और पुरुषों के समान उनको भी सूर्य प्रकाश से आयुष्य बढ़ाने की आवश्यकता है। तथा–

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥

–अथर्व० १२।१।६२॥

"हे मातृभूमि ! तेरे से उत्पन्न होने वाले पदार्थ हमारे लिये निरोगिता और आरोग्य को बढाने वाले हों। हमारी दीर्घ आयु में हम सब ज्ञान ग्रहण करते हुए (अर्थात् जागते हुए) तेरे लिये अपनी बलि अर्पण करने वाले होवें।" दीर्घायु होकर अपनी मातृभूमि की सेवा करना चाहिये यह उपदेश इस मंत्र में है।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायाऽरिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव॥

–अथर्व० २।४।१॥

"सदा ही दक्ष रहते हुए और अपना नाश न करते हुए दीर्घ आयुष्य के लिये तथा महान् युद्ध के लिए सन्नद्ध होना चाहिए।" इस मन्त्र में चार उपदेश हैं। (१) हमेंशा अपने कर्तव्य में दक्ष रहना, ताकि कर्तव्य करने में किसी प्रकार से भी कसूर न हो सके। (२) अपनी अवनति न हो इसलिए हमेशा प्रयत्न करना चाहिए। (३) अपना आयुष्य बढ़ाने के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिए। (४) बड़े युद्ध के लिये सदैव सन्नद्ध रहना चाहिए। मनुष्यों के अस्तित्व के लिये सदा "बड़ा युद्ध" अर्थात् जीवन कलह (Struggle for existence) चला है। जो इस

जीवनकलह में दृढ़तापूर्वक युद्ध करेगा, वही संपूर्ण सिद्धियां प्राप्त कर सकता है परन्तु जो इस युद्ध से डर कर पीछे हटेगा, वह उसी क्षण मर जायेगा। यह जीवन का झगड़ा सब काल में, सब देशों में और सब अवस्था के लोगों में चला था, चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। वेद कहता है कि इस झगड़े में संमिलित होने के लिये अपने आपको योग्य बनाओ। इसमें विजय पाना चाहिए। यदि विजय चाहिऐ, तो प्रबलता से आगे होकर युद्ध दुष्ट वासनाओं के साथ अपने अंत:करण में होता है। दुराचारी चोर डाकुओं के साथ समाज में होता है, और राष्ट्र के अथवा साम्राज्य के शत्रु से रणभूमि में होता है। सर्वत्र प्राप्त करना ही उद्दिष्ट होना चाहिये।

यहां तक जो वचन दिये हैं, उनका सारांश निम्नलिखित है--

(१) सौ वर्ष अथवा सौ से अधिक आयु बढ़ाने के लिये मनुष्य का प्रयत्न होना चाहिये। (२) यावज्जीवन प्राप्त करने का यत्न करते हुए पुरुषार्थ का जीवन व्यतीत करना चाहिये। (३) प्रत्येक इंद्रिय की तथा प्रत्येक अवयव की शक्ति बढ़ानी चाहिए तथा उनके द्वारा ऐसे कर्म करने चाहिए कि जिनसे आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की अभिवृद्धि होती रहे। (४) अपने पुरुषार्थ पर विश्वास रखना चाहिये और मन में दृढ़ निश्चय करना चाहिये, कि मैं पुरुषार्थ से अपना आयुष्य बढ़ाऊंगा और मरने तक अदीनता का जीवन व्यतीत करुंगा। (५) वीर्य, शौर्य, धर्य पौरुष, उद्यम, साहस, बल बुद्धि, पराक्रम, ओज, सहनशक्ति, तेज, पुष्टि, निष्पापी, सदाचार, ऐशवर्य आदि के साथ अपना आयुष्य बढ़ना चाहिये। (६) सौ वर्ष जीने का मनुष्य को निसर्ग सिद्ध अधिकार हे, पुरुषार्थ से उससे अधिक आयु बन सकती है, यदि बीचमें अपमृत्यु का डर प्राप्त होने लगे, तो उस अपमृत्यु को पुरुषार्थ के पहाड़ के नीचे दबा देना चाहिए। (७) जो मृत्यु का पांव अपने सिर पर है, उसको पुरुषार्थ के साथ हटाकर दीर्घायु प्राप्त करना चाहिये। अत:शुद्धि और बाह्य पवित्रता करना, सत्कर्मों में मन को दृढ़ता के साथ लगाना, आशामय जीवन (Optimistic life) व्यतीत करना, और ऐहिक अभ्युदय तथा परमार्थिक निश्रेयस के लिये पुरुषार्थ करना, ये ही तत्त्व हैं, कि जिनसे आयुष्य की वृद्धि होती है। (८) इस लोक को प्रतिबंध न समझकर एक परम पवित्र स्वातंत्र्य प्राप्ति का साधन समझना। (९) आत्मघात के मार्ग का अवलंबन न करते हुए, अपना अभ्युदय स्वयं करने का दृढ़ निश्चय करना। (१०) पूर्ण आयु समाप्त होने तक मृत्यु

के वशमें न जाने का दृढ़ निश्चय करना। (११) तारुण्य और बाल्य में इस प्रकार का आचरण करना कि, जिससे पूर्ण आयु का उपभोग लेते हुए वृद्धावस्था में भी शक्ति क्षीण न हो सके। (१२) व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जनता की उत्तम अवस्था पर परिपूर्ण आयु प्राप्त होना सर्वथैव अवलंबित है, इसलिए इनकी स्थिति सुधारने के लिए पूर्ण प्रयत्न करना। (१३) अपनी इंन्द्रियों को ऋषि बनाकर शरीर को तपोवन बनाना, तथा इंद्रियों को देवता बनाकर शरीर को नंदनवन बनाना। (१४) सब आयु उत्तम सत्कर्म में व्यतीत करना। (१५) सबसे अधिक उन्नति साधन करने के लिये अत्यंत पुरुषार्थ करना। (१६) मन को विनयशील और सदाचार सम्पन्न बनाकर, शुद्ध, अन्न, शुद्ध जल, शुद्ध वायु के सेवन करके, पवित्र भूमि में निवास कर, सूर्य प्रकाश से अपना आयुष्य बढ़ाना। (१७) घर में गृहिणी को सज्ञानी और सच्छील बनाकर उसके साथ आनन्द से रहते हुए दीर्घ आयु को व्यतीत करना। (१८) दीर्घ आयु के महान् जीवनकाल में विजयी होने के लिये उत्कट पुरुषार्थ करना।

उक्त वेद मंत्रों का तथा अन्य वचनों का यह आशय है। अब इस आशय को ध्यान में रख कर, अपने प्रस्तुत विषय का विचार करना चाहिए।

(४) मनुष्य के प्रयत्न से आयुष्य घट या बढ़ सकता है वा नहीं?

कई समझते हैं कि जन्मते ही विधाता प्रत्येक की आयु को निश्चय कर देता है। उसमें घटना वा बढ़ना नहीं हो सकता। परन्तु वेद का आदेश इस मत से विरुद्ध है। पुरुषार्थ से आयु बढ़ सकती है तथा दुराचार से आयु घट सकती है। यह वेद का आशय उक्त मंत्रों में प्रकट हो चुका है। परन्तु विषय स्पष्ट करने के लिये यहां उतने ही मन्त्र रखता हूं कि जिनका आशय उक्त प्रकार का है। देखिए–

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः॥ –ऋग्० १०।१८।२॥

"(**मत्योः पदं**) मृत्यु के पांव को (**योपयंतः**) परे ढकेलते हुए (**यदा**) जब (**द्राघीयः आयुः**) दीर्घ आयुष्य को (**प्र-तरं**) अधिक लंबा बनाकर (**दधानाः**) धारण करते हुए (**एत**) चलेंगे।" इस मंत्र

में " (१) मृत्यु के पांव को परे हटाना (२) दीर्घ आयु को अधिक दीर्घ बनाकर धारण करना", ये दो भाव अत्यन्त स्पष्ट हैं।

'योपन' शब्द के अर्थ (Eflacing) मिटाना, (Perplexing) दिक् करना, (Destroying) नाश करना, (Removing) हटाना है। इन अर्थों को लेकर **'मृत्योः पदः योपयन्तः।'** इस वाक्य का अर्थ (१) मृत्यु के पांव को मिटाकर, (२) मृत्यु के अधिकार को दिक् करके, (३) मृत्यु के स्थान का नाश करके, (४) मुत्यु के पांव को हटाकर; अपना आयु दीर्घ बनाना चाहिए। इस प्रकार अर्थ होता है। यह अर्थ स्पष्ट है, इस अर्थ से साथ आयु बढ़ाने का भाव स्पष्ट होता है।

प्रत्येक पदार्थ अथवा प्राणी के उत्पन्न होते ही मृत्यु अपना पांव उसपर रख देता है। जो पुरुषार्थ हीन दुराचारी होते हैं, वे उसके आध ीन शीघ्र ही हो जाते हैं, परन्तु जो मनुष्य सदाचारी और दृढ पुरुषार्थी होते है, वे उस मृत्यु के पांव को परे ढकेल कर अपनी आयु बड़ी दीर्घ बनाते हैं। और देखिए–

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रं आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः॥

–अथर्व० १८।३।१७॥

"**(क-स्ये)** आत्मा की चलनी में **(मृजानाः)** अपने आपको शुद्ध बनाकर **(रिप्रं)** अशुद्धि अथवा मलों के **(अति यन्ति)** दूर करके **(नवीयः)** नूतन, नवीन **(प्रतरं आयुः)** दीर्घ आयुष्य **(दध ाताः)** धारण करते हैं।" इस मंत्र में "(१) आत्म परीक्षा द्वारा अपनी शुद्धि करना, (२) शारीरिक, मानसिक,बौद्धिक और आत्मिक मलों को दूर करना, तथा शरीर से बाहर गृह, ग्राम, प्रांत, समाज, राष्ट्र के मलों को दूर करके सब प्रकार की शुद्धि करना (३) और नवीन दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति करना; ये तीन भाव स्पष्ट हैं। इन भावों को देखने से पुरुषार्थ द्वारा आयुष्य की वृद्धि करना वेद को संमत है, ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है। मलों को दूर करने से आयुष्य की वृद्धि होती है, अर्थात् मलयुक्त होने से आयुष्य हानि होती है।

उक्त मंत्र में "रिप्र" शब्द का अर्थ निम्न प्रकार है–(Vile) नीच, कमीना, (Sin) पाप, (Dirt) मल, दोष, (Impurity) अशुद्धता। इन दोषों को व्यक्ति से तथा समुदाय से हटाना चाहिये जिनसे वृद्धि हो सकती है, और आयुष्य बढ़ सकता है। इनको हटाने के लिये ही पुरुषार्थ करने की अत्यन्त आवश्यकता है। तथा–

शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि
शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम॥ –अथर्व० १२।२।१८॥

"(१) शुद्ध बनाना, (२) पवित्र होना, (३) दुरितों को अर्थात् दुष्टभावों को दूर हटाना, (४) सब वीर भावों से युक्त होना।" ये चार भाव इस मन्त्र में हैं। आंतरिक और बाह्य शुद्धता के विषय में पहले लिखा गया है, दुरित (दूर+इत) उसको कहते हैं, कि जो विजातीय (Foreign) भाव अन्दर घुसने लगते है, जो विजातीय पदार्थ अन्दर जाकर अजीर्ण बनाते हैं। उनको हटाना और ऐसे भाव तथा ऐसे पदार्थ प्राप्त करने की जो पचन होकर अपने बन कर रहें। यही दीर्घायु बनाने की कुंजी है।

इन मंत्रों को विचारपूर्वक देखने से स्पष्ट होता है कि पुरुषार्थ से आयुष्य की मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। इस विषय में निम्न मंत्र देखने योग्य है–

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन॥

–ऋग्० १०।१८।४॥

"(१) सब जीवों के लिये यह आयुष्य की (परिधिं) मर्यादा निश्चित की है। (२) इनमें से कोई भी निश्चय से इस आयुष्य रूपी अर्थ को (मागात्) न छोड़े। (३) पूर्ण सौ वर्षों तक जीते रहें। (४) अपमृत्यु को पर्वत से दबा ले।"

इस मंत्र में सौ वर्ष की साधारण आयुष्य मर्यादा सब मनुष्यों के लिये रखी है, यह पहले कथन है। (१) सभ्य राज्यशासन में जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य के जन्मसिद्ध "नागरिकत्व के अधिकार (Constituional rights)" हुआ करते हैं, (२) उत्तम पुरुषार्थ से विशेष मनुष्यों को विशेष अधिकार प्राप्त हो सकते हैं, तथा (३) राज्यशासन में विरोध करने से अधिकार छीने भी जा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार परमेश्वरीय राज्यशासन में (१) सौ वर्ष जीने का प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार (Constitutional rights) है। (२) जो पुरुषार्थी लोग, यम, नियम,आसन, प्राणायाम आदि योगसाधना द्वारा विशेष अधिकार (Special rights) प्राप्त करेंगे उनकी आयु बढ़ सकती हैं तथा (३) जो आचारहीन मनुष्य अपने आहार विहार का

विचार छोड़कर मनमाना अयोग्य वर्ताव करेंगे, उनके अधिकार छीने जायेंगे, इसलिये उनकी आयु कम होगी। अर्थात् परमेश्वर की की हुई आयुष्य की मर्यादा सर्वसाधारण जनता के लिये है, पुरुषार्थी सदाचारी लोक अपनी अवधि बढ़ा लेते हैं और दुराचारी तथा अत्याचारी अपनी अवधि घटा लेते हैं।

आयुष्य ही वास्तविक 'अर्थ' (सच्चा धन) है। इतर सब धन इसके होने से बरते जा सकते हैं, परन्तु इसके न होने से कोई अन्य धन काम नहीं दे सकता। इसलिये "(अ-परः) निकृष्ट हीन-मनुष्य इस आयुष्य रूपी धन को न छोड़े" ऐसा दूसरा उपदेश इस मंत्र में आया है, यह ध्यान रखने योग्य है। "पर" का अर्थ (Higher, superior, highest, best) उत्तम उत्कृष्ट, उच्च इस प्रकार का होता है, तथा "अ-पर" का अर्थ (Inferior, lower) निकृष्ट, नीच, घटिया, हीन इस प्रकार का है। 'मा गात्' का अर्थ (May not depart from, may not go away from) छोड़ न देवे, भाग न जावे, ऐसा है। अर्थात् कोई हीन मनुष्य इस आयुष्य रूपी सत्य धन को छोड़कर अथवा इसका त्याग करके भाग न जावे। जो उच्च श्रेणी का मनुष्य होता है, वह अपना प्राप्त धन सुरक्षित रख कर पुरुषार्थ से अधिक प्राप्त करता है, परन्तु निम्न श्रेणी का मनुष्य वंशपरंपरा से प्राप्त हुआ धन दुर्व्यसनों में खोकर शीघ्र ही निर्धन बन जाता है, तथा पुरुषार्थ न करने के कारण अधिक धन उसको प्राप्त नहीं होता है, अर्थात् उसको निर्धन ही रहकर दुःख भोगना पड़ता है। यही अवस्था आयुष्य के विषय में समझनी उचित है।

तीसरे चरण में "सब मनुष्य पूर्ण सौ वर्ष जीते रहें" ऐसा जो कहा है वह सर्वसाधारण दृष्टि से है। विशेष और हीन ऐसी दो अवस्थाएं स्वतन्त्र हैं।

चतुर्थ पाद में **"पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन"** यह वाक्य है। इसमें 'पर्वत' शब्द विशेष महत्त्व रखता है। (पर्वणि सन्ति अस्मिन् स पर्वतः) जिसमें पर्व होते हैं, उसको पर्वत कहते हैं।

पर्ववान् पर्वतः। पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा॥ निरु० १।२०।५॥

"पृणाति पालयति पूरयति (पृ पालन-पूरणयोः क्र्यादिः) प्रीणाति तर्पयति (प्रीञ् तर्पणे क्र्यादिः) वा तत् पर्व पालकं पूरकं तर्पकं वा। तेन युक्तः पर्वतः॥"

'जो पालन और पूरण करता है अथवा तृप्ति करता है, उसको पर्व कहते हैं। ऐसे पालक-पूरक-तर्पणकारक पर्वों से जो युक्त होता है वह पर्वत होता है।'

उक्त मंत्र में 'पर्वत' शब्द विशेष संकेत रखता हैं इसलिये पर्वत शब्द के अर्थ का उक्त प्रकार विशेष विवरण करना आवश्यक हुआ। अब इस विवरण का फलितार्थ देखिए-

पर्वतः=पर्व-वान् = (१) पालनं (Protection), संरक्षण
(२) पूरणं (Perfection), परिपूर्णता
(३) प्रीणनं (Contentment), तृप्ति

शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि का पालन---पूरण---प्रीणन करना अर्थात् इनका सरंक्षण करना, इनको परिपूर्ण उन्नत करना और इनको शांत रखना, इस त्रिविध कर्मरूपी पर्वत के नीचे मृत्यु को दबाना है।

'अन्तर्दधताम्' का अर्थ, 'बंद रखना, दबाना, परदे के पीछे रखना' है। इन अर्थों को ध्यान में रखकर उक्त मंत्र के चतुर्थ चरण का अर्थ देखने से निम्न उपदेश मिलता है-"(१) शरीर, इन्द्रियां, मन आदिका संरक्षण करना, (२) इनको परिपूर्ण बनाना और (३) इनको शांत रखना, इन तीन कर्मों के परदे के पीछे मृत्यु को रखिये।' मनुष्य और मृत्यु इनके बीच मे उक्त 'तीन कर्मरूपी पहाड़ के समान सख्त परदा रखिए, जिसमें मनुष्यों के पास मृत्यु झटपट न आ सके। देखिये-

	{	पालन	}	
	{	Protection	}	
मनुष्य	{	पू-र-ण	}	मृत्यु
Men	{	Perfection	}	Death
	{	प्री-ण-न	}	
	{	Contentment	}	

पर्वत *(Mountain)*

दीर्घायु बनने का यह उपाय है। अपने और मृत्यु के बीच में 'पालन-पूरण-प्रीणन' का पहाड़ खड़ा करना चाहिये, जिससे आयुष्य

बढ़ जाता है।

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठिता।

त्वया सहस्त्रकाण्डेनायुः प्रवर्धयामहे।। अथर्व० १९।३२।३।।

"हे (ओष-धे) दोष धोनेवाले ! तेरा मूल द्युलोक में है। और पृथिवी में तेरी स्थिति है। तेरे हजारों टुकड़ों से हम सब अपनी आयु (प्र) अधिक (वर्धयामहे) बढ़ाते हैं।"

इस मंत्र में (१) दोष धोने का और (२) आयुष्य बढ़ाने का संबंध स्पष्ट बताया हैं ओषधी का अर्थ 'दोष-धी' दोषों को धोकर दूर करने वाली ऐसा निरुक्तकार देते हैं। दोषों को दूर करने से आयुष्य का प्रवध 'न होता है अर्थात् आयुष्य अधिक बढ़ता है, इस मंत्र से, विशिष्ट आचारण द्वारा आयुष्य बढ़ता है, यह बात सिद्ध होती है, इसलिये इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं । और देखिए–

भूयश्च शरदः शतात्।। –यजु० ३६।२४।।

भूयसीः शरदः शतात्।। –अथर्व० १९।६७।।

इन मंत्रों से सिद्ध होता है कि "(शरदःशतात्) सौ वर्षों से भी (भूयसीः। भूयः) बहुत अधिक आयु" मनुष्य प्राप्त कर सकता है (१) किंचित अधिक (२) विशेष अधिक और (३) बहुत अधिक ऐसे अधिकता के तीन भेद होते हैं। अधिक शब्द जहाँ होता है, वहाँ दुगने से कुछ कम परन्तु एक से अधिक इतना ही भाव व्यक्त होता है जैसा–

(१) देवदत्त को सौ रुपये मिले।

(२) यज्ञमित्र को सौ से किंचित अधिक मिले।

(३) विष्णु मित्र को सौ से विशेष अधिक मिले।

(४) शतानंद को सौ से बहुत अधिक मिले।

इन वाक्यों का आशय निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

(१) देवदत्त को सौ मिले।

(२) यज्ञमित्र को सौ से सवासौ तक मिले।

(३) विष्णुमित्र को सवासौ से डेढ सौ तक मिले।

(४) शतानंद को डेढ सौ से पौवने दो सौ तक मिले।

यदि दो सौ मिलते तो कहने वाला "दो सौ" ऐसा कह सकता था, जैसा कि देवदत्त के विषय में उन्होंने पहले कहा है। दो सौ मिले नहीं,

यह बात उनके कहने से ही स्पष्ट है। इसलिये 'भूयसीः आदि शब्द दो सौ का भाव नहीं बताते, परन्तु पौने दो सौ तक की आयुका भाव बता रहे हैं, जो आयु भीष्मपितामह के चरित्र में १७० बताई गई है। विवरण से आयु का निम्न प्रमाण दिखाई देगा–

(१) अ-पर-कनिष्ठ आयु का प्रमाण-जन्म से ७० वर्षतक

(२) साधारण-आयु का प्रमाण-७० से १०० वर्षतक

(३) पर-अथवा परम आयु का प्रमाण १०० से १७५ तक

साधारण पुरुषार्थी के लिये–१०० से १२५ वर्षतक

विशेष पुरुषार्थी के लिये–१२५ से १५० वर्षतक

महान् पुरुषार्थी के लिये–१५० से १७५ वर्षतक

महान् पुरुषार्थ में यमी, नियमी, संयमी, यति, योगी आदि दृढ़व्रती भीष्मपितामह, वसिष्ठ, व्यास आदि लोग गिने जा सकते हैं तथा इनके नीचे बाकी के लोग रहेंगे।

आ षोडशात् सप्ततिवर्षपर्यंतं यौवनम्। –वात्स्यायन। कामसूत्र।।

'सोलह से सत्तर वर्ष तक यौवनावस्था' होने के कारण ७० वर्ष तक जीना कनिष्ठ प्रमाण में समझा जाता था। अब की अवस्था और प्रकार की है, यह बात अलग है। अस्तु। इस प्रकार वेद के मत से आयुष्य की मर्यादा कहां तक हो सकती है, तथा प्रयत्न से आयुष्य जैसा बढ़ सकता है, वैसा अनवस्था से घट भी सकता है, इत्यादि बातों का विचार वेद के प्रमाणों से किया गया है। अब निबन्ध के अगले भाग का विचार करेंगे।

(५) किन-किन नियमों के पालन करने से आयुष्य की वृद्धि होती है? और किस प्रकार वर्ताव होने से आयुष्य घट सकता है।

अब आयुष्य वृद्धि के नियमों और उपायों का विचार करना है। महाभारत में, जहाँ भीष्मपितामह जैसे अतिदीर्घायुषी के जीवन के वृतान्त दिये हैं वहाँ, दीर्घायु बनने के विषय में कई उपदेशप्रद बातें लिखी हैं, उनका अब विचार करेंगें–

युधिष्ठिर उवाच

शतायुर्वै पुरुषः..................... अल्पायुर्वाऽपि मानवः।।२।।

भीष्म उवाच

आचाराल्लभते.....................श्रोतव्यं नित्यमेव तु॥

—महाभारत अनु०पर्व० अ० १०४।६,११,१२,१४,१५,१८,२१,२७,२८,३०,६२,६४,६८,७४,८६,८९,९१,९५,१२०,१४७॥

इस अध्याय में आयुष्यवर्धन के उपाय कहे हैं। जो संस्कृत जानते हैं उनको उचित है कि वे मूल महाभारत में इस अध्याय को अच्छी प्रकार पढ़े। जो संस्कृत नहीं जानते उनके लिये उक्त श्लोकों का भाव क्रमशः नीचे देता हूं—

(१) सदाचार से दीर्घ आयु, श्री और कीर्ति प्राप्त होती हैं (२) नास्तिकता, आलस्य, गुरुकी आज्ञा और शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करना, ये बातें आयु का नाश करती हैं। (३) शील और मर्यादा को छोड़ना, और व्यभिचार करना ये दो बातें आयुष्य का नाश करने वाली हैं। (४) क्रोध न करना, सत्य का पालन करना, हिंसा न करना, असूया न करना, कुटिलता न करना, इससे सौ वर्ष की आयु होती है। (५) नाखून खाना, उच्छिष्ट भक्षण करना, इनसे आयु का नाश होता है। (६) ब्रह्ममुहुर्त में उठकर धर्म का विचार करना और दोनों संधिकाल में संध्या करना। इससे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। (७) व्यभिचार न करना। क्योंकि व्यभिचार से आयुष्य का नाश होता है। (८) माता पिता और आचार्य को नमस्कार करना। (९) ग्राम के पास शौच न करना। (१०) जूता, वस्त्र, पात्र आदि दूसरे का वर्ता हुआ धारण न करना। अपने एक पांव से दूसरा पांव न घसीटना, नित्य ब्रह्मचर्य से रहना। (११) आक्रोश, झगड़ा, तथा चुगली की बातें न करना (१२) किसी को मर्मवेधी वाक्य न बोलना, निंदा न करना, हीन से किसी पदार्थ को स्वीकार न करना। (१३) पांव गीले रखकर भोजन करने से सौ वर्ष जीता रहता है। (१४) केशों को न खेंचना, शिर पर प्रहार न करना, दोनों हाथों से शिर न खुजलाना। (१५) दुर्गंध वायु में न ठहरना। (१६) छुट्टी के दिन पढ़ना नहीं। (१७) सोने के समय दूसरा वस्त्र पहनना। (१९) कभी-कभी उपवास (फांका) करना। (२०) एक पात्र में दूसरे के साथ कभी भोजन न करना। (२१) रजस्वला स्त्री का बनाया हुआ भोजन कभी न करना। (२२) निषिद्ध अन्न का सेवन न करना। (२३) दिन में दो बार ही भोजन करना और बीच में कुछ न खाना। (२४) जिस अन्न में केश होंगे उसको न खाना। (२५) संध्याकाल में

न सोना, न पढ़ना और न खाना। (२६) सदा प्रयत्न करते रहना, प्रयत्नशील मनुष्य को सुख प्राप्त होता है। (२७) ऐसी अपनी शक्ति बढ़ानी कि जिससे शत्रुओं का हमला न हो सके, तथा अपने नौकर और स्वजन अपना अनादर न कर सकें। (२८) सदा श्रेष्ठ पुरुषों का जीवन चरित्र पढ़ना।

इत्यादि उपदेश भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर को किया। ये उपदेश सबको ध्यान में रखने चाहिए। उक्त उपदेशों से आलस्य से आयुष्य का नाश बताया है। क्रोध से भी मनुष्य की हानि होती है। क्रोध जिस समय आता है, उस समय मस्तिष्क और खून का बिगाड़ होता है, जिससे आयु का नाश निश्चय से होता है। दूसरे का वर्ता हुआ कपड़ा, जूता आदि न पहनने का उपदेश आजकल विशेष ध्यान में रखने योग्य है। क्योंकि उपहार की दुकानों में दूसरे के उच्छिष्ट पात्र ही बारम्बार बर्ते जाते हैं, जिससे रोगों की वृद्धि हो रही है, और आयुष्य घट रहा है। छुट्टी के दिन अभ्यास न करने का उपदेश विद्यार्थियों को ध्यान में रखना चाहिये। जो सात दिन बड़ा परिश्रम करते हैं, उनको एक दिन विश्राम अवश्य चाहिए, जिजसे शरीर और मस्तिष्क ठीक होकर अधिक परिश्रम करने का बल आता है। कभी-कभी उपवास अर्थात् मास में एकवार फांका करने से अजीर्ण का दोष दूर होता है। एक दिन में दो से अधिकबार खाने की आदत आयुष्य की हानि करने वाली है।

दीर्घायु की इच्छा करने वालों का ये उपदेश तथा अन्य नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए। जो अधर्म का आचरण करेंगे उनकी आयु बीस पचीस वर्षो की होगी ऐसा भागवत में कहा है—

त्रिंशद्विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥

—श्री० भागवत० १२।२।११।।

"कलह के युग में बीस से तीस वर्ष तक मनुष्यों की परम आयु होगी है" अधर्मयुक्त वर्तावही कलियुग है। धर्मयुक्त आचार सत्ययुग हुआ करता है। मनुष्य दृढ प्रयत्न से आरोग्य के नियमों का पालन करेंगे, तो ऐसे समय में भी दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो सकता है। केवल लोगों के दृढनिश्चय की आवश्यकता है। निश्चय से सदाचार पालन करने से दीर्घ आयु होती है। सदाचार के तीस लक्षण है।

सत्यं दया तपः.....................सर्वेषां समुदाहृतः॥

—श्री० भागवत्० ७।११।८,९,१०,११।।

(१) **सत्यं**, (२) **दया**, (३) **तपः**—सदाचरण करने के समय होने वाले कष्ट सहन करने की शक्ति (४) शौच—सब प्रकार की शुद्धता। (५) **तितिक्षा**—सहनशक्ति, तेजस्विता (६) **ईक्षा**—विचारपूर्वक कार्य करना। (७) **शमः**—मन का संयम (८) **दमः**—इन्द्रियनिग्रह (११) **त्यागः**—दान, निष्कामभाव। (१२) **स्वाध्यायः**—धर्मग्रन्थ का अध्ययन, (१३) **आर्जवै**— सरलता, (१४) **संतोषः**, (१५) **समदृक्**—पक्षपात छोड़कर सबको समदृष्टि देखना। (१६) सेवा—लोकसेवा करना, परोपकार करना। (१७) ग्राम्यबुद्धिका त्याग करना। (१८) मनुष्यों की उन्नति अवनतिका इतिहास देखकर यथायोग्य विचार करना, (१९) मौन—बड़बड़ न करना। (२०) आत्मविमर्शनम्—अपने चाल चलन का विचार करना। (२१) **संविभागः**—सब प्राणियों के लिये यथायोग्य अन्न का विभाग करना। (२२) **आत्मवत् बुद्धिः**—सब मनुष्यों के ऊपर आत्मवत् भाव रखना। अपने समान ही सबको सुख दुःख है कि यह भाव रखना। (२३) **श्रवणं**, (२४) **कीर्तनं**, (२५) **स्मरणं**— परमेश्वर और श्रेष्ठ पुरुषों के गुणों का श्रवण, उपदेश और स्मरण करना। (२६) **इज्या**—यज्ञ, सत्कर्म, हवन करना। (२७) **नतिः**—नम्रता धारण करना, (२८) **दास्यं**—परमेश्वर का सेवक बनकर रहना। (२९) **संख्य**— परमेश्वर से मित्रता करना (३०) **आत्मनिवेदनं**—परमेश्वर को अपना मनोगत निवेदन करना। ये तीस लक्षण मनुष्य धर्म के हैं। इनका पालन करने से आयुष्य की वृद्धि होती है।

योग—साधना करने से आयुष्य की वृद्धि होती है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम ये चार योग के अंग (Physical culture) शारीरिक स्वास्थ्य के लिये हैं, तथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान औनर समाधि, ये योग के चार उत्तर अंग (Spiritual culture) अंतःकरण के स्वास्थ्य के लिये हैं। शारीरिक और अंतःकरण के स्वास्थ्य से ही मनुष्य की आयु बढ़ती है। आहार, विहार, भोग आदि सब योग्य मर्यादापूर्वक करने से योग का उत्तम साधन होता है। और योगसाधना से आयुष्य की वृद्धि होती है।

राक्षसी भावों का त्याग और दैवी भावों की धारणा करने से अमरपन अर्थात् दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है। देवों के लिये अ-मर शब्द प्रयुक्त होता है, उसका अंर्थ उनकी बिलकुल मृत्यु नहीं होती ऐसा नहीं

है, क्योंकि सूर्यादि सब देव मरण-धर्म-युक्त हैं। ब्रह्मदेव भी कल्पों में बदलते रहते हैं, ऐसा पुराण कहते हैं, किन्तु अमर शब्द 'दीर्घ आयु' का ही वाचक है। दैवी भावों की कल्पना करने के लिये देववाचक शब्दों का विचार करेंगे-

(१) **देवः**-देवता वाचक शब्दों में देव शब्द मुख्य है इसके ग्यारह अर्थ हैं-

क्रीडाकुशलः-(Sports-man)-खेलों में कुशल। क्रीडा शब्द से यहां जूआ आदि इष्ट नहीं, क्योंकि **"अक्षैर्मा दीव्यः"** (ऋग्० १०।३४।१३) इस प्रकार जूआ, पत्ते आदि वीर्यहीन खेलों का वेदने निषेध किया है। क्रीडा शब्द से यहां मर्दानी खेलों का भाव लिया जाता है। खुली हवा के सब मर्दानी खेल आयुष्यवर्धक हैं।

विजिगीषुः-(Wishing to conquer) अपनी जाति का विजय करनेकी इच्छा धारण करनेवाले।

व्यवहारदक्षः-व्यवहार में चतुर।

द्योतमानः-(Spirited) तेजस्वी।

स्तुत्यः-जो प्रशंसनीय कर्म करते हैं।

मुदितः-जो सदा आनन्द वृत्ति से रहते हैं।

संमदयुक्तः-(One who keeps self-respect)-आत्म संमान रखने वाले।

स्वप्नवान्-जो उत्तम गाढ निद्रा का अनुभव कर सकते हैं।

कांतिवान्-जो परस्पर प्रेम का बर्ताव करते हैं।

गतिमान्-हलचल करने में प्रवीण।

दाता-जो उदार होते हैं।

देव शब्द के ये ग्यारह अर्थ हैं। इन गुणों से देवत्व आता है अर्थात् अमरत्व अथवा दीर्घायुत्व प्राप्त होता है। अब देववाचक अन्य शब्द देखिए-

(२) **विबुध**-विशेष ज्ञानसंपन्न।

(३) **सु-रा**-जिनका दान उत्तम अर्थात् विचारयुक्त होता है।

(४) **सु-पर्वन्**-जिनमें पालनशक्ति (Power of protection), पूरणशक्ति (Power of perfection), और प्रीणन (Contentment) होता है। (पर्व=पालनु-पूरणं-प्रीणनं च)

(५) **सु**–मनस–उत्तम मन वाले।

(६) **अ**–दिति–नंदना–स्वतंत्रता से आनंदित होने वाले। (दिति Bondage, अदिति Freedom)

(७) **ऋभव**–(Artist) जो कारीगर होते हैं। (Smith, clever)

(८) **लेखा**–जो उत्तम लेखक होते हैं।

(९) **अ–स्वप्ना**–जो बहुत सोते नहीं। [देव शब्द के अर्थ में 'स्वप्नवान्' लक्षण देवों का आया है, और यहां 'अस्वप्न' आया है। हमेशा सोना सुस्ती का लक्षण हे, वह देवों में नहीं है, परन्तु निद्रा आरोग्य के लिये अवश्य चाहिये।]

(१०) **अमृतान्धस**–आरोग्यदायक उत्तम अन्न भक्षण करने वाले। अथवा **'अ-मृत-अंघस'**–मुर्दों का अन्न अर्थात् मांसभक्षण न करने वाले। [**'मृतान्धस'** अर्थात् मुर्दों का अन्न मांसाहार होता है, और **'अ-मृतांधस्'** निर्मांस भोजन हुआ करता है। **'अधस्'** शब्द का ही अर्थ शाकाहार है। और बल देनेवाले अन्न का नाम भी **'अंधस्'** है। इस शब्द से धान्यफलमूलाहार आयुरोग्य देनेवाला है ऐसा सिद्ध होता है।]

(११) **बर्हिमुखः**–जो अंतर्मुख होते हैं। मन आदि की शुद्धि में जो लगे रहते हैं। बर्हिस् शब्द का अर्थ–अंतराल, अंतःकरण, मध्यस्थान है।

(१२) **ऋतुभुजः**–पहले उत्तम कर्म करके पश्चात् भोजन करने वाले।

(१३) **गीर्वाणाः**–जिनकी वाणी प्रभावशाली होती है।

(१४) **वृन्दारकाः**–वृन्द अर्थात् समूह की शक्ति रखने वाले।

(१५) **त्रिः**–दशा–बाल, तरुण और वृद्ध इन तीनों दशाओं का पूर्णतया अनुभव लेनेवाले, अर्थात् तीन दशाओं का पूर्ण अनुभव लेने के पश्चात् ही जो दीर्घायु का अनुभव करके इस लोक को छोड़ते हैं।

(१६) **निर्जराः**–(जराया निष्क्रांताः) जो वृद्धावस्था से भी परे जाते हैं, अर्थात् भीष्मपितामह के समान जो अतिदीर्घ आयु को प्राप्त होते हैं।

इत्यादि देवतावाचक शब्दों का विचार है। देवतावाचक शब्द अनंत हैं। उनके मूल अर्थों की खोज करने से देवों के देवत्व का पता लग सकता है। देवत्व के गुण ही अमरपण अर्थात् दीर्घायु देनेवाले होते हैं।

इन गुणों की धारणा करनेवाले अमरपन को प्राप्त होते हैं। इन शब्दों के अर्थों की खोज करने से देवत्व के गुणों का ज्ञान हो सकता है। और दीर्घायु होने के लिये आवश्यक गुणों का बोध हो सकता है।

इस प्रकार इन देवतावाचक शब्दों से सूचित गुणों को धारण करना और अमरमन को प्राप्त करना चाहिये। यहां कई लोग कहेंगे कि देव (त्रिविष्टप) स्वर्ग में रहनेवाले होते हैं। इनके गुण पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों में किस प्रकार आ सकते हैं। इस शंकाकी निवृत्ति करने के लिये स्वर्गभूमि की कल्पना देखनी चाहिये–

भीष्म उवाच।

उत्तरे हिमवत्पाश्र्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते।
पुण्यः क्षेम्यश्च काम्यश्च स परो लोक उच्यते।
काले मृत्युः प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च॥

–महाभा० शांतिपर्व २(मा०आ०)

'हिमालय के उत्तर भाग में उत्तम पुण्यकारक परलोक है, वही काम्य अर्थात् इच्छा करने योग्य है। वहाँ योग्य समय पर ही मृत्यु होती है, और व्याधियां नहीं होती।' इस प्रकार देवलोक का वर्णन भीष्मपितामह ने किया है। इसको देखने से आज कलका तिब्बत ही त्रिविष्टप, परलोक स्वर्ग, देवलोक समझा जाता था। इसमें शंका नहीं हो सकती। प्रायः यह बात उत्तर ध्रुव तक चली जा सकती है, क्योंकि–

उत्तरः पृथिवीभागः सर्वपुण्यतमः शुभः। शांतिपर्व।

"उत्तर दिशा का पृथिवी का हिस्सा शुभ है।" ऐसा भीष्मपितामह ने कहा है। महाभारत में अन्यत्र वर्णन है कि, ब्रह्मसभा, देवसभा, उत्तर ध्रुव–मेरु–पर है। इत्यादि वर्णन से पता लगता है कि एक समय, भीष्माचार्य से पूर्व काल में, उत्तर दिशा के लोग अधिक सभ्यता से युक्त थे, जिनको देव शब्द से पुकारा जाता था, और वे बड़े दीर्घायु हुआ करते थे, और उक्त लक्षणों से युक्त थे। यदि एक समय तिब्बत के लोग इन गुणों से युक्त होते थे, तो आर्यावर्त के लोग देवत्व के गुणों से युक्त क्यों नहीं हो सकेंगे !

अस्तु इस प्रकार दीर्घायुत्व प्राप्ति के गुणधर्मों का विचार हुआ। उसके विरोधी गुणों को धारण करने से शीघ्र मृत्यु होती है, जो दुर्गण हममें इस समय हैं, उनका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

(६) अब हमारी आयु की दशा क्या है और उसको दीर्घ बनाने के लिये किस प्रकार यत्न करना चाहिए?

इस समय हमारे देशवासियों की औसत अर्थात् साधारण आयु पच्चीस वर्षों से भी कम हैं। यद्यपि सौ वर्षतक कई लोग जीते हैं तथापि प्राया बहुतों की मृत्यु शीघ्र ही होती है। यह एक बडी भारी राष्ट्रीय आपत्ति है। पचीस वर्षतक मनुष्य की आयु विद्याध्ययन में चली जाती है और शेष ७५ वर्ष की आयु में उससे देशका भला होना होता हैं। जिस देश में विद्वान् लोग अल्प आयु में मर जाते हैं, उस देशकी उन्नति इसलिये शीघ्र नहीं होती, कि वहाँ अनुभवाशाली वृद्ध विद्वान् राष्ट्र का नेतृत्व करने के लिये प्राप्त नहीं, कि वहाँ अनुभवशाली वृद्ध विद्वान् राष्ट्र का नेतृत्व करने के लिये प्राप्त नहीं होते। विद्या समाप्त होने के पश्चात् दस पंद्रह वर्ष में उनकी मृत्यु होने के कारण, अनुभव प्राप्त होने से पूर्व ही उनका वियोग हो जाता है, इसलिये उनके विद्याध्ययन के लिये जो राष्ट्रीय द्रव्य खर्च होता है। उस द्रव्य का योग्य बदला उस राष्ट्र को नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार राष्ट्र पर आर्थिक आपत्ति आ रही है। इसलिये दीर्घायु बनने के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिस।

जहाँ अन्य देशों में ८०।९० वर्ष की आयु तक वृद्ध विद्वान् पुरुष राष्ट्र का कार्य करते हुए दिखाई देते हैं, वहाँ हमारे भारत में विद्वानों की मृत्यु ४०।५० के पूर्व ही हो रही हैं। किसी देशको अल्पायु विद्वानों से कोई लाभ नहीं हो सकता है। इसलिये सब लोगों को इस प्रश्न का हल करना उचित है।

'ब्रह्मचर्य और गुरुकुलवास' ये दो उपाय सारांशरूप से कहे जा सकते हैं। विस्तार से विचार करेंगे तो सब आरोग्य शास्त्र का मंथन करना होगा। विद्याध्ययन की प्राथमिक आयु आराण्यक विद्यालयों (Forest schools) में व्यतीत होनी चाहिये। ब्रह्मचर्य से वीर्य रक्षण करना चाहिये तथा व्यायाम के द्वारा शरीर को सुदृढ बनाना चाहिये। शुद्ध अन्न, शुद्ध जल, शुद्ध वायु का सेवन करके अपनी आंतरिक और बाह्य स्वच्छता अत्यंत करनी चाहिये।

संशयी मनोवृत्ति और निराशावाद को झटपट छोडकर, आत्मविश्वासी मनोवृत्ति और आशावाद का जीवन व्यतीत करना चाहिये। इस निबंध के पूर्वस्थलों में दिये हुए वेद शास्त्रों के वचनों का विचार करने से

आयुष्यवर्धक जीवन क्रम का पता लग सकता है। आशा है कि पाठक उक्त वचनों का अच्छी प्रकार विचार करके, अपने जीवन में सुधार करके, अपनी आयु बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

अंत में आशा करता हूं कि, आर्यावर्त के लोग तथा अन्य लोग भी, वेदशास्त्रों के दीर्घायु सम्बन्धी उपदेशों का तथा उसके सहायक आधुनिक आरोग्यादि शास्त्रों का परिशीलन करके, तथा उसके अनुकूल आचरण करके, अपनी दीर्घायु बनाकर, अपनी उन्नति का साधन करके, सब मानवी उन्नति कों कृतकृतय बनेंगे।

व्यक्ति में शांति! राष्ट्र में शांति!! जगत् में शांति!!!

मृत्यु के चार कारण

अनभ्यासेन वेदानाम् आचारस्य च वर्जनात्।
आलस्याद् अन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ् जिघांसति।।

—मनु० ५।४।।

अन्वव—वेदानाम् अनभ्यासेन आचारस्य च वर्जनात् आलस्यात् अन्न-दोषात् च मृत्युः विप्रान् जिघांसति।

अर्थ—वेदों का अभ्यास न करने से, सदाचार के त्याग से, आलस्य और अन्न-दोष से मृत्यु विप्रों को मारना चाहती है।

अर्थात्—वेदों का अभ्यास करने से, सदाचार के रहने से, पुरुषार्थी होने और पवित्र अन्न के सेवन से मृत्यु विप्रों को नहीं मारना चाहती, अमरता प्रदान करना चाहती है।

उपर्युक्त श्लोक से विस्पष्ट विदित हो रहा है कि मृत्यु विप्रों को नहीं मारना चाहती, परन्तु यदि कुछ विप्रों की ओर से त्रुटि होगी, तो उन्हें अवश्य मारना चाहती है। 'मृत्यु विप्रों को मारना चाहती है और वह विप्रों को नहीं मारना चाहती है' इससे क्या यह समझा जाये कि मृत्यु विप्रों के लिये ही अच्छा या बुरा करने वाली है। क्या जो विप्र नहीं हैं, उनको मृत्यु से कुछ भी संबंध नहीं है? क्या जो विप्र नहीं है, वे मरेंगे नहीं, अमर रहेंगे? ऊपर के अर्थ को देखकर तो स्थूल दृष्टि से यही जँचता है कि विप्रों को ही मारने का ठेका मृत्यु के जिम्मे है। विप्रेतर सभी मृत्यु से दूर अमर हैं। तब तो यह गजब का अन्धेर है। 'विप्र' उन्हें कहते हैं, जो शुभकर्त्ता हैं, जो मेधावी हैं, जो ब्रह्म के चिन्तन से ब्राह्मण बनना चाहते हैं इत्यादि। जो अशुभ कर्त्ता हैं, जो मेधावी नहीं हैं, ब्रह्म-चिन्तन से दूर हैं, इत्यादि उन्हें 'विप्र' नहीं कहेंगे। 'विप्र' को योगी और 'अविप्र' को अयोगी कहेंगं। सामान्य विचारधारा योगी को नेक और अयोगी को बद मानती है। मृत्यु बद को छूना तक नहीं चाहती, और नेक को मारना चाहती है और बचाना भी चाहती है। यह मनु का घोष हे, वैदिक मनु का घोष है, यह निष्प्रयोजन और सारहीन नहीं होगा। सामान्य लोग भी महसूस कर सकते हैं कि जो अच्छा काम कर रहा है, यदि तिलमात्र भी चूकेगा, तो मृत्यु उसे मार

डालेगी। अन्यथा उसको नहीं मारेगी। जो अच्छा काम करता ही नहीं अथवा बहुत कम अच्छा काम करता है, उसके सम्बन्ध में मृत्यु क्यों नहीं कुछ कहती। यह विषय विचारणीय और महत्त्वपूर्ण है। जो डूबा हुआ है, गोते खा रहा है, पदे-पदे मुर्दा है, भटका हुआ है, अशुभ-कर्म में लीन है, वह मृत्यु के ग्रास में तो है ही, उसको मारने या न मारने की बात उठती ही नहीं, परन्तु जो तरना चाहता है, हाथ-पैर मार रहा है, पदे-पदे जीवन-शक्ति का प्रदर्शन करता है, सही मार्ग पर चलना-चाहता है, शुभ कर्म करने में लीन है, वह 'विप्र' मृत्यु से संघर्ष ले सकता है, अमरता प्राप्त कर सकता है। उसको मृत्यु कब मार सकती हे ओर कब नहीं मार सकती है, यह प्रश्न मजेदार हे, अर्थात् विप्र, जो साधनारत है, जीवित रहना चाहता है, यदि वह वेदाभ्यास से दूर सदाचार से हीन, आलसी और शुद्धान्न भोजी नहीं रहेगा, तो अन्त में सत्य से दूर अपवित्र, निकम्मा बनकर शुद्ध-अशुद्ध पदार्थों का भेद भूलकर कदन्न-भोजी मिथ्या-भोग-भोगी बनकर विप्रेतर लोगों की भाँति सदा मृत्यु के ग्रास बने जाने की भाँति मृत्यु का शिकार बनेगा ही। मृत्यु उसे कदापि छोड़ नहीं सकती। जिस परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में ऐसे चतुर्दुर्गुण युक्त विप्र नहीं होंगे, वह परिवार नहीं पनपेगा, समाज विकसित नहीं होगा, राष्ट्र उत्थित नहीं होगा और विश्व युद्ध की आशंकाओं से त्रस्त कर्त्तव्य विमुख रहेगा। अतएव विप्र को सदा सर्वथा सावधान रहकर वेद-चिन्तन, सदाचरण, पुरुषार्थ एवं सात्विक भोग-भोगी, मानवभोग-भोगी बनकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को सदा मृत्यु के ग्रास में जाने से बचाना होगा। विप्र सबकी सम्यग् रक्षा करता आया है, वही सम्यग् रक्षा करने में सदैव समर्थ रहेगा। विप्रेतर जन उचित अनुगमन करके **'सूर्याचन्द्रमसाविव'** पूर्णता को प्राप्त कर सकेंगे, सम्यग् ज्ञान सम्यक्-कर्म, सम्यक्-शान्ति, सम्यक्-विज्ञान से सुख-शान्ति की उपलब्धि हो सकेगी, पूर्ण आयु, पूर्ण भोग, पूर्ण मुक्ति से सभी लाभान्वित होते रहेंगे और मृत्यु भी अकाल में अपना कुछ बिगाड़ नहीं सकेगी, अकाल मृत्यु, अपमृत्यु नही होगी।

'एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय' यह किसी सन्त की अनुभूत वाणी है। 'एक' की दुरुस्तगी से सब ठीक रहेंगे और 'मूल' को मुख्य को छोड़कर इतरेतर लोगों की दुरुस्तगी की चिन्ता में सब बिगड़ जायेंगे। यदि वृक्ष के मूल को यथोचित सींचते रहेंगे, तो समस्त तना, शाखाएँ, डाल-पात की रक्षा हो सकेगी और मूल को न सींचे और

मूलेतर की सींचने की निष्फल चेष्टा करें, तो समूचा वृक्ष नष्ट हो जायेगा। यों ही 'विप्र' साधक, योगी, मेधावी, शुभकर्मकर्त्ता, ब्रह्म-चिन्तन-परायण लोगों की सब प्रकार से सहायता होती रहेगी, तो वे सबकी रक्षा हर तरह से करने में समर्थ रहेंगे। सन्त तुलसी ने कहा है—

मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान को एक।
पाले-पोसे सकल अङ्ग, तुलसी सहित विवेक॥

'विप्र' ही मुख तुल्य मुखिया बनकर रक्षा कर सकेगा। सबको विप्र ही उचित निर्देशन देकर कार्यरत रख कर रक्षा करेगा। ऐसा 'विप्र' समाज के लिये, राष्ट्र के लिये, विश्व कि लिये अतीव आवश्यक है। बिना 'विप्र' के सब संसार जड़हीन वृक्ष तुल्य क्षण भर भी खड़ा नहीं रह सकता। अतएव मृत्यु उसकी रक्षा में सदा तत्पर रहना चाहती है, पर चेतावनी भी दे देती है कि अनुशासन-हीनता होने से 'विप्र' भी मार डाला जायेगा, विप्रेतर तो मरे हुए हैं ही। विप्र-प्रतिष्ठित चरण चिह्नों पर चलकर विश्व का जन-जन निहाल हो सकेगा और सबको उत्तरोत्तर मृत्यु भय से मुक्ति मिलती जायेगी, सब निर्भय, नीरोग, शान्त और ब्रह्मवादी बनकर स्वर्गसुख भोगते रहेंगे।

'विप्रत्व' प्राप्ति के यावत् साधनों में चार मुख्य एवं सरलतम साधनों का निर्देश करके सबको विप्र बनने और अमर होने की बात बतलाई गई है। जो 'विप्र' अनुगमनीय है, वह चार बातों पर विशेष ध्यान दे। वे चार बातें निम्नलिखित हैं—

१. वेदाभ्यास करना। २. सदाचारी होना। ३. आलस्य न करना। ४. सात्विक अन्न भोजी होना।

वेदाभ्यास निरन्तर होना चाहिए। 'शास्त्र सुचिन्तित पुनिपुनि पेहिए।' यह स्वाध्यायशील पुरुषों की सीख है। बार-बार किसी चीज को करना या सोचना अभ्यास कहलाता है। कर्म या विचार पवित्र हुआ, तो अभ्यास उत्तम होगा। इसीलिये 'वेदाभ्यास' की ही बात कही है। वेद सत्य का भण्डार है, या जहाँ-जहाँ सत्य है, सब वेद है, वेद का है, वेद-सम्मत है, अतः उसी का पुनःपुनः चिन्तन करना चाहिए, मन को स्वस्थ रख सकेगा। **मनः सत्येन शुध्यति**। मन की पूतता पर सभी इन्द्रियों की पूतता निर्भर है। मन यदि स्वस्थ-चिन्तन करता है। सत्य-चिन्तन करता है, वेद-चिन्तन करता है, कर्म-इन्द्रियां और ज्ञान-इन्द्रियां भली

प्रकार अपना कर्म पूर्ण करती रहेंगी और उत्तम कर्म बनता रहेगा। गड़बड़ी नहीं होगी। मानव सदाचारी बनता जायेगा। वह अपने धर्म व कर्तव्य का सम्यक् पालन करेगा। **'सत्यं वद। धर्मंचर।'** उपनिषद् की अकाट्य सीख सदा सही है। चिन्तन और उसका जीवन में प्रयोग जब बार-बार होगा, तब वेदाभ्यास और सदाचार दोनों सधते जायेंगे। चिन्तन निर्बल हुआ, उसका जीवन में प्रयोग नहीं हुआ, आदमी आलसी बना, अपनी शक्ति का प्रयोग बन्द किया, अपनी रक्षा का हिसाब बिगाड़ा, इन्द्रियाराम बनकर जीभ का गुलाम बना, मानव विगर्हित अन्न का प्रयोग प्रारम्भ किया, समझ लीजिये मृत्यु के कोड़े पड़ेंगे, विप्रत्व की प्राप्ति नहीं होगी, विप्र की विप्रता दूर हो जाएगी, वह अकाल में ही काल-कवलित होगा, उसका सारा महल चौपट हो जायेगा, सामन्य जनों का नेतृत्व तो दूर रहा, परोकार हो ही नहीं सकता और वह अध म-जन की भाँति मृत्यु का ग्रास बन जायेगा। ऐसी दशा में सुखी और यशस्वी बनने के लिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य का पालन यथावत् होना चाहिए, उत्तम चाल-चलन का ही प्रदर्शन होना चाहिये, आलस्य को छोड़कर अपनी समस्त शक्तियों से अपने प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूर्ण करने को सतत-प्रयास होना चाहिए और जीवन-रक्षा हेतु शुद्ध, पवित्र, सात्विक और ईमानदारी की कमाई का ही उपभोग होना चाहिए। अन्न दोष से शरीर ठीक नहीं रहेगा, मन पापी बनेगा, सभी इन्द्रियाँ सशक्त नहीं रहेंगी। सदाचार नहीं निबहेगा, और नर-तन धारण का सर्वोत्तम फल अमरता नहीं मिलेगी। ऋषियों ने विप्रों के ही मरने और न मरने के विषय में पूछा, विप्रेतर जनों की बात पूछनी सारहीन होती। मानवता को विप्रता भी कहेंगे। जहाँ मानवता है, विप्रता भी हैं। जहाँ मानवता नहीं है, विप्रता भी नहीं है।

'विप्रत्व' प्राप्ति में सबका सतत प्रयास वाञ्छनीय है। 'विप्र' एवं विप्रेतर दोनों सत्य का समादर करेंगे। दोनों सत्य को जीवन में उतारते चलेंगे, सदाचारी बनने में अपना चिन्तन पुष्ट करेंगे। अपनी सारी शक्ति का दिल खोलकर प्रयोग करेंगे, पुरुषार्थी रहेंगे, निकम्मे नहीं रहेंगे। शरीर-रक्षार्थ हाथ-पाँव चलाकर परिश्रम करके मुफ्तखोरी को हेय समझकर शुद्ध और पसीने की गाढ़ी कमाई ही खायेंगे। व्यक्ति-व्यक्ति, परिवार-परिवार, समाज-समाज, राष्ट्र-राष्ट्र जब विप्रत्व के चतुःसूत्री घोष को सदा समक्ष रखेंगे, तभी यह विश्व साक्षात् स्वर्ग-धाम बन पाएगा और सभी निर्भय जी सकेंगे, अमर रहेंगे।

मानव-मात्र का धर्म है सत्यचिन्तन, सदाचार, पुरुषार्थ एवं न्यायोचित भोजन करना। सत्य जहाँ से भी प्राप्त हो, ग्रहणीय होगा। सदाचार कहीं से भी प्राप्त हो, स्वीकार्य होगा। पुरुषार्थ किसी भी प्राप्तव्य वस्तु हेतु वाञ्छनीय होगा, करना पड़ेगा। वही भोजन करने का हक होगा, जो अपने श्रम के बदले क्षीणशक्ति की पुनः प्राप्ति हेतु शुद्ध और मानवोचित होगा, जीने के लिये अनिवार्य होगा, किसी की आह से दूर होगा। 'विप्र' और 'विप्रेतर' सदैव चतुःसूत्री योजनाओं का निर्भय पालन करेंगे। कर्तव्य-पालन हेतु **'अमानी मानदो मान्यः'** का सिद्धान्त समक्ष रहेगा। मान (आदर) की प्रथम इच्छा न रखते हुए अपने बड़ों को मान देना होगा, फिर अमानी (मान-निःस्पृह) मान्य अर्थात् आदरणीय बन जायेगा। 'मान' प्रथम चाहें और बड़ों का मान बाद में दें, यह अव्यवहार्य है। ऐसा व्यक्ति मान्य या आदरणीय नहीं होगा। पहले भोजन हो और बाद में स्वस्थ जैसे यह अस्वाभाविक है, वैसे ही मान प्रथम चाहें और गुरुजनों को मान बाद में दें, पहले ऊँचा आसन चाहें और बड़ों को बाद में दे, तो केसे कोई आदर-पात्र बन सकेगा। जब जन-जन श्रद्धा-पूर्वक विप्र का शुभ कर्म-कर्त्ता का समर्थन करेगा, तभी वह भी अपनी साधना में सफल होगा और अनुयायी वर्ग भी सफलता (अदीन मनोवृत्ति) की ओर अग्रसर हो सकेगा। खेती-किसानी, वाणिज्य-व्यवसाय, राज्य-शासन, उपदेश, शिक्षा-दीक्षा, किसी भी क्षेत्र में सत्य, सदाचार, पुरुषार्थ और पवित्र-भोजन अनिवार्य रहेंगे। असत्य असदाचार, आलस्य और अन्यायार्जित भोग विप्र और विप्रेरत को ले डूबेंगे, धरा रसालत को पहुच जायेगी। स्थान, पात्र और समय के बन्धनों से मुक्त सतत सेवनीय सत्यचिन्तन, सदाचार घोर-पुरुषार्थ और न्यायोचित भोग से विश्व-हितकारक है।

सत्य-चिन्तक सतत् अभ्यास द्वारा सदाचार का पालन करके परुषार्थ से पवित्र अन्न-वस्त्र से परम सत्य स्वरूप प्रभु के सत्य रूप का साक्षात् करता जायेगा, क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर की भाँति सत्य, सदाचार, पुरुषार्थ एवं न्यायोचित भोग की व्यावकता और अनिवार्यता अनुभवगम्य कर सकेगा। सारा मानव-समाज अपना प्रतीत होगा, और **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का भाव साकार हो उठेगा। विप्रसमाज को, मेध ावी जनों को, शुभकर्त्ताओं को सर्वत्र अबाध गति से प्रोत्साहन सब ओर से मिलना चाहिए। इसी में विद्या, बुद्धि, शक्ति, धन एवं सेवा का सत्य अर्थ अमरता का सन्देश दे रहा है।

मृत्यु एवं अमर

आ वृषस्व। –ऋग्० १।१०४।९।।

हे मनुष्यों ! तू बलवान् बन और सुखों की वर्षा कर।

मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः। –ऋग्० १।११०।४।।

मरणधर्मा होते हुए भी मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

मिनाति श्रियं जरिमा तनूनाम्। –ऋग्० १।१७८।१।।

वृद्धावस्था शरीरों के सौन्दर्य का नष्ट कर देती है।

इस विषय में गीता के दो प्रसिद्ध श्लोक स्मरणीय हैं–एक तो **"नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।"**–गीता २।२३।। जिसमें कहा गया है कि जीव अमर है–न मरता है, न जलता है और न ही गलता है। और दूसरा **"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।"**–गीता २।२२।। जिसमें बताया गया है कि जीव चोला बदलता रहता है। चोला अनित्य है, जल सकता है, गल सकता है, शीघ्र ही मैला या जीर्ण हो जाताहे, काम नहीं देता

अतः काम को आगे बढ़ाने के लिये आवश्यक हो जाता है कि दूसरा चोला प्राप्त किया जाए। कर्त्तव्यनिष्ठ अतिवृद्ध पुरुषों का यह नित्य का अनुभव है कि जिन आँख, कान, प्राण आदि द्वारा वे कार्य करते थे वे उपकरण अब काम नहीं दे रहे, जीर्ण हो गये हैं, साधक न होकर बाधक हो रहे हैं। जैसे यात्रा के बीच में किसी की साइकल टूट जाए तो उसका जी नहीं चाहेगा कि कोई नई साइकल मिल जाए जिसमें मैं आगे बढ़ सकूँ। इसी प्रकार एक आध्यात्मनिष्ठ पुरुष वर्त्तमान शरीर को जीर्ण और बाधक समझकर नये नेत्र, नये प्राण, नये साधनों के लिये प्रभु से प्रार्थना करता है, क्योंकि ये साधन ही उसकी स्वस्ति या कल्याण के हेतु हैं। यह प्रभु की महति कृपा है कि एक चोले के जीर्ण होने पर दूसरा चोला मिल जाता है। वेदमंत्र में **"मृळय"** और **"स्वस्ति"** दोनों शब्दों से प्रकट होता है कि मृत्यु इतनी भयानक नहीं हे, फटे पुराने कपड़े उतारकर ही तो नया पहना जा सकता है। इसलिए विद्वान् और तत्त्ववेत्ता लोग मृत्यु को अनिष्ट नहीं समझते।

वेद कहता है **"यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्यु"**–ऋग्० १०।१२१।२।।

अमृत और मृत्यु दोनों परमात्मा की छाया अर्थात् शरण स्थल हैं। कपड़े पहनाना भी माता-पिता की कृपा है और फट आने पर या व्यर्थ हो जाने पर उनको उतरवा देना भी कृपा ही है। जिसको ऐसा ज्ञान हो जाता है उसको मरते हुए भी मौत का डर नहीं रहता। गीता में कहा है-

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।"-गीता २।२७।।

इसमें तो केवल इतना ही कहा है कि मृत्यु अवश्यम्भावी है, इसलिए इसपर शोक नहीं करना चाहिए। परन्तु वेदमन्त्र इससे भी आगे बढ़कर कहता है-**"मृळया नः स्वस्ति"** -ऋग्०१०।५९।६।।

अर्थात् हे प्रभो! कृपा करके मेरा चोला अवश्य बदलिये, क्योंकि मेरा कल्याण इसी में है। (वेद सूक्तियाँ)

अतः आज का मनुष्य गर्वपूर्वक कह सकता है कि-**"अगन्म ज्योतिरमृता अभूम।"**-यजु० ८।५२।।

अर्थात् हमने ज्ञान प्राप्त किया और उससे हम अमृत=अ+मृत न+मृत=जीवित हो गये, मौत के फन्दे से निकल गये।

मृतक का चिन्तन जीवन से दूर ले जाता है। जीवन प्रकाश व मरण अन्धकार है, अतः वेद का उपदेश है-

"आ रोह तमसो ज्योतिः" -अथर्व० ८।१।८।।

अन्धकार को छोड़कर प्रकाश पर आरुढ़ हो।

"तमसो मा ज्योतिर्गमय।" -शत०ब्रा०

मुझे अन्धकार से हटाकर प्रकाश की प्राप्ति करा। सारा वैदिक साहित्य प्रकाश प्रचारक है। होना भी चाहिए, क्योंकि अन्धकार उल्लू को या उसी जैसों को पसन्द आ सकता है। वेद तो **"उलूकयातुं जहि"** अर्थात् उल्लू का स्वाभाव छोड़ने का उपदेश करता है। वेद में मनुष्य बनने का प्रथम साधन **"भानुमन्विहि"** अर्थात् प्रकाश का अनुसरण बताया गया है। मरों का क्या अनुसरण? गुरु जीता ही अच्छा। जीता गुरु ही शिष्य को संवार-सुधार सकता है। जीवन ज्योति है और ज्योति जीवन है, अतः वेद कहता है-

"आ रोह तमसो ज्योतिः" ज्योति प्राप्ति के लिए, जीवन लाभ के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए, उद्योग करना चाहिए। अनुद्योगी, आलसी तो प्रकाश प्राप्त करके भी अन्धकार में रहता है। किसी नीतिकार ने कहा है-**"जीवननरो भद्रशतानि पश्यति"** जीता मनुष्य सैकड़ो भलाइयों का अनुभव करता है।

हाय ! वे तेरे मूढ़ अभागे पुत:पुन:–पुनः मौत का शिकार हो रहे हैं, जन्म–मरण की मार सह रहे हैं। उनकी अवस्था है–**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी–जठरे शयनम्।** शतपथ ब्रा० में कितना सुन्दर लिखा है–

न श्वः श्व इत्युपासीत् को हि मनुष्यस्य श्वो वेद।–शत० ब्रा०

अर्थात् कल की बात मत करो। मनुष्य के कल को कौन जानता है। आचार्य चाणक्य ने भी यही कहा है–

वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः। –चाणक्य नीति।

बुद्धिमान् व्यक्ति केवल वर्त्तमान में ही विश्वास करते हैं।

पाश्चात्य कवियों और विचारकों को भी मृत्यु के सम्बन्ध में ऐसी ही कल्पना रही है। एक्विन मिलर ने अपनी पुस्तक 'The song of Creation' में लिखा है–

Death is but a name, a date.
A mile-stone by the stormy road,
where you may lay aside your load,
and bow your face and wait,
defying fearing defying fate.

मृत्यु क्या है–सिर्फ एक नाम ही तो है। गणना के लिए एक तिथि है। जीवन झंझावतमय पथ में मीलों का एक पड़ाव है– जहाँ यात्री अपनी कमर पर लदे बोझ को उतारकर एक तरफ रख देता है, सिर झुका लेता है, आराम करता है, इन्तजार करता है, जहाँ वह मृत्यु–भय और भाग्य का तिस्कार करता हुआ बैठ जाता है। कवि सिसरो ने लिखा है–

The last day does not being extinction.
But change of place.

जीवन का अन्तिम दिन मनुष्य का विनाश नहीं अपितु स्थान परिवर्तन मात्र है। न्यूमाण्ड एण्ड प्लेचनर लिखते हैं–

To die is to begin to live. It is an end of an old state, weary work and to commence a new and a better.

मरना नया जीवन का प्रारम्भ है। मृत्यु क्या है–पुराने नीरस, थका देने वाले काम को एक तरफ रखकर नये और बेहतर काम को प्रारम्भ

कर देना है।

मृत्यु शब्द ही इस रूपान्तरण की प्रक्रिया और महत्त्व को स्पष्ट कर रहा है। **मृत्+यु**=मृत्यु। यु संस्कृत की एक क्रिया है जिसका अर्थ है–**युमिश्रणामिश्रणयोः**–अर्थात् तोड़ना और जोड़ना। यह तोड़-जोड़ ही मृत्यु है। यह आत्मा पुराने शरीरं को छोड़कर नये शरीर को ग्रहण कर लेता है–यही मृत्यु और जन्म है। एक ही प्रक्रिया के दो रूप हैं ये। या एक ही वृत्त है–मृत्यु-जन्म-मृत्यु। कहीं से प्रारम्भ कर लीजिए। क्या विना मृत्यु के जन्म सम्भव है या विना जन्म के मृत्यु की कलपना की जा सकती है? दोनों एक-दूसरे के साथ अनिवार्य रूप से जुड़े हैं, या यों कहें कि एक ही सिक्के के दो पहलु हैं। एक ओर से देखो तो मृत्यु और दूसरी ओर से देखो तो जन्म दिखाई देता है। कवीन्द्र रवीन्द्र के अनुसार इसे ऐसा समझें कि एक माँ अपने छोटे बच्चे को स्तनपान करा रही है। वह शिशु स्तनपान करते समय बड़ा आनन्दित होता है। किन्तु माँ थोड़ी देर में उसे एक स्तन से छुड़ाकर दूसरे स्तन पर लगा देती है। मध्यकाल में वह बच्चा बहुत रोता है, हाथ-पैर भी मारता है। पर दूसरे स्तन पर पहुँचते ही शान्त हो जाता है। यही मृत्यु का स्वरूप है। जब जीव एक शरीर से छुड़ाया जाता है तो उस शिशु की भाँति बहुत दुःखी होता है। वह हाथ-पैर भी पटकता है, आँसू भी बहाता है। दूसरे व्यक्ति भी उससे सहानुभूति प्रकट करते हैं। किन्तु दूसरा जन्म मिलते ही भूल जाता है यह दुःख। जहाँ उसका जन्म होता है वहाँ कितनी-कितनी प्रसन्नता प्रकट की जाती है। बाजे बजाये जाते हैं। बड़े-बड़े भोज दिये जाते हैं। शहनाई-वादन होता है। उत्सव मनाये जाते हैं। सगे-सम्बन्धी, मित्र-बान्धव बधाई व साधुवाद देते हैं। किन्तु जरा विचार कीजिये कि जिस जीव ने यहाँ जन्म लिया है कहीं तो उसका वियोग हुआ होगा। यदि वहाँ वियोग (मृत्यु) न हुआ होता तो यहाँ संयोग (जन्म) भी केसे होता? इसलिये ज्ञानी लोग मृत्यु के इस रहस्य को जानकर मत्यु से कभी दुःखी नहीं होते। आचार्य चाणक्य कहते हैं–"**मृत्युरपि धर्मिष्ठ रक्षति।**" धर्मात्मा अर्थात् सदाचारी की तो मृत्यु भी रक्षा करती है।

मृत्यु से मनुष्य से कष्ट अनुभव करता है। इसलिए योगदर्शन में इसे क्लेश (**क्लिशयति पीडयतीति क्लेशः**–जो क्लेश अर्थात् पीड़ा पहुँचाये वह क्लेश है) नाम दिया है। क्या मृत्यु वास्तव में क्लेशदायक है? इस प्रश्न को दो दृष्टियों से विचारना चाहिए। (१) मृत या निष्प्राण

व्यक्ति की दृष्टि से। (२) मृत व्यक्ति के सगे-सम्बन्धी, मित्रों की दृष्टि से।

मरने वाले प्रत्येक प्राणी को मृत्यु से बहुत बड़ा कष्ट अनुभव होता है—यह प्रत्यक्ष है। यहाँ तक कि नाली में पड़ा हुआ तुच्छ कीड़ा भी मृत्यु नहीं चाहता है। दुःखी-से दुःखी मनुष्य, असाध्य रोगों से पीड़ित तथा अभाव ग्रस्त व्यक्ति भी मृत्यु के नाम से घबराता है। इस कष्ट के मूल में दो कारण हैं—(क) अज्ञान और (ख) ममता। अज्ञान है मृत्यु के वास्तविक रूप के प्रति, जिसकी ऊपर चर्चा की गयी है हम विचारें कि परिणाम की दृष्टि से मृत्यु दुःखप्रद नहीं अपितु सुखप्रद है। जीवन और मरण को दिन और रात की भाँति समझना चाहिए। हम सभी जानते हैं कि दिन काम करने के लिये और रात्रि विश्राम करने के लिये है। मनुष्य या कोई भी प्राणी जब दिन में काम करते-करते थक जाता है तो उसके अन्तःकरण (मन, बुद्धि आदि) तथा ब्राह्यकरण (हाथ, पैर, आँख, कान आदि) सभी काम के अयोग्य होकर विश्राम की आवश्यकता अनुभव करने लगते हैं। रात्रि विश्राम की अवस्था है। मनुष्य गाढ़ निद्रा में शयन करता है, उस समय उसके सभी अंग क्रियाशून्य हो जाते हैं। प्रातःकाल तक उसके सभी अंग पुनः शक्ति के भण्डार बनकर क्रियायोग्य हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार जीवन दिन की भाँति काम करने के लिए है और रात्रि की तरह विश्राम देकर पुनः उसे नये रूप में कार्य करने योग्य बना देती है। जीवन का प्रारम्भ बालयावस्था से होता है। यौवनावस्था कार्य का चरम शिखर है। किन्तु वृद्धावस्था तक पहुँचते-पहुँचते मनुष्य थक जाता है। इस समय मस्तिष्क साथ नहीं देता—स्मृतिनाश होने लगता है। कान सुनना कम कर देते हैं। हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक सभी अंगों से कोई-न-कोई शिकायत होने लगती है। ऐसे समय मृत्युरूपी रात्रि आकर उसे परम विश्राम का अवसर देती है। उसे नये सवेरे की भाँति नया शरीर मिलता है। जहाँ उसे नया उत्साह, नई स्फूर्ति, नई शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होता है। बुढ़ापे में हाथ, पैर हिलाना कठिन हो गया था, किन्तु इस बचपन में हाथ-पाँव ठहराना कठिन हो जाता है, अतः परिणाम की दृष्टि से मृत्यु दुःख का कारण नहीं, अपितु सुखप्रद और स्वीकार्य होनी चाहिए। इस वास्तविकता के अनुभव न होने या अज्ञान के कारण ही मनुष्य मृत्यु से दुःख अनुभव करता है।

खत्म होगा न ज़िन्दगी का सफर, मौत बस रास्ता बदलती है।

निरुक्तकार यास्क के अनुसार–**मारयति इति मृत्यु**–उच्छेदन करता है, वह मृत्यु है।

मुंचति इति मृत्यु–मोचन करता है, वह मृत्यु है।

सुप्रसिद्ध आर्य वैज्ञानिक डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती के अनुसार–

Death is a door between two lives the present one and the next one. अर्थात् मृत्यु दो जीवनों के बीच का द्वार। यानी वर्तमान और भावी जीवन के बीच का द्वार। इसी प्रकार कोलटन महोदय का भी कथन है–"What we call life is journey to death and what we call death is a passport to life." अर्थात् जिसे हम जीवन कहते हैं–वह मृत्यु की ओर यात्रा है और जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह जीवन का पार पत्र है। अन्त सदा आदि से जुड़ा होता है। मृत्यु जीवन से उतनी ही जुड़ी है जितना कि जन्म। डॉ० यंग ठीक ही तो लिखते हैं कि–

"Our birth is nothing but our death is begun." अर्थात् हमारा जन्म मृत्यु की शुरुआत के सिवा और कुछ भी नहीं। गीता का भी यही कथन है कि **"जातस्य ध्रवोमृत्यु ध्रुव जन्म मृत्यस्य च"**। अर्थात् जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है, उसका जन्म निश्चित है। कविवर दिनकर का यर्थाथ कथन है कि–

कफन और पोशाक छटी की दोनों एक वसन हैं,
पता नहीं हम मरते हैं या जन्म नया लेते हैं।